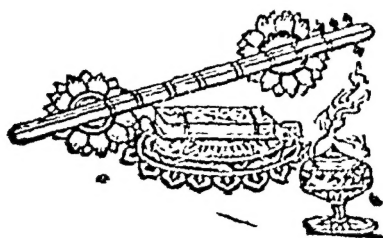


क्रमांक	विषय	पृष्ठांक
१६	देशावकाशिक व्रत	१४६
१७	पोषधोपवास व्रत	१४५
१८	देश पोषध	१५७
१९	पोषध में सामायिक करना या नहीं	१५८
२०	पोषध में लगने वाले दोष	१५९
२१	अतिथिसंविभाग व्रत	१६२
२२	उपासक प्रतिमा	१६९
२३	विशुद्ध प्रत्याख्यान	१७४
२४	श्रावक के मनोरथ	१७६
२५	श्रावक के विश्राम	१७८
२६	जैनधर्म का आस्तिकवाद	१८०
२७	आत्मा का अस्तित्व	१८२
२८	आत्मा शाश्वत है	१८८
२९	जीव कर्म का कर्त्ता है	१९३
३०	जीव कर्मफल का भोक्ता है	२००
३१	मुक्ति है	२२१
३२	आस्तिकता के विषय	२२९
३३	मुक्ति का उपाय है	२३४
३४	अनेकांत वाद	
	निक्षेप स्वरूप	
३५	नय स्वरूप	

क्रमांक	विषय	पृष्ठांक
५७	नियतिविजय को जड़न विषय	१९९
५८	प्रधानमन्त्री मोर पण्डितजी का विचार-संनिभ	१९१
५९	महाराज का निर्णय	१७१
६०	अपने विचार	१७४
६१	मनन्तानुबन्धी कथाय स्वरूप	१७९
६२	रघुनाथ पटेल की छाछ	१८६
	भगवान् का लोकोत्तर जीवन	३२५
	! भ. महावीर का धीतरागी व्यक्तित्व	३९३
	! सूत्रकार स्तुति	४०५



मैं-वस्तुतः है जो कि तत्त्वों के अन्तर्गत है।

'वेन-मान मानस' में जो तत्त्व माना है, परम
तत्त्वों को जान कर ही जो तत्त्व माना जायगा।
एक ओर हमें जो मानने को आवश्यकता थी पर
ऐसा नहीं मानना चाहिये। जो तत्त्व तत्त्व है—
तत्त्वों के प्रथम तत्त्व—आदि तत्त्व। तत्त्वों में जो तत्त्व
देवतत्व ही है। तत्त्वों में ही तत्त्वों का प्रकाश है।

किसने बताया जीव-अजीव ? कहे मन न तो जीवित
मानते हैं, न अजीव तत्व के अमीस्व अमीस्व आदि भाव
हैं। वन्य का स्वरूप पुण्य-पाप आदि तत्त्वों का स्वतन्त्र
विशुद्ध स्वरूप बताने वाले हैं कौन ? कहना होगा कि परमा-
परम वीतराग सर्वज्ञ-सर्वदर्शी त्रिनेश्वर भगवंत ही ऐसे हुए हैं
जो समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करते हैं। तत्त्वों का तथ्यात्मक
स्वरूप वे ही बता सकते हैं, जिनके राग-द्वेष समूल नाश हो गए
हों, और केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त कर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन
गए हों। ऐसे परम श्रेष्ठ विश्वोत्तम परमात्मा ही तत्त्वों का
प्रकाश कर सकते हैं। उनके प्रति श्रद्धा हो, तभी उनके उप-
दिष्ट तत्त्वों पर श्रद्धा हो सकती है। यदि तत्त्वोपदेशक पर
विश्वास नहीं, तो तत्त्व का मूल्य ही क्या रहे ?

कोई सोना चांदी एवं रत्नादि बहुमूल्य वस्तु खरीदना
चाहे, तो विश्वसनीय जोहरी के पास जाता है। वह दूसरों से
पूछता है कि—“ऐसा विश्वसनीय जोहरी कौन है कि जिससे



जिसमें सम्यग्ज्ञान ही नहीं, उसका तो कहना ही क्या है ? अन्य मत के उपास्य देवों में सम्यग्ज्ञान होता ही नहीं । अतएव उनका कथन सत्य नहीं हो सकता । तात्त्विक विषयों में तो वे अज्ञानी होते ही हैं । जहाँ अज्ञान का दोष है, वहाँ अन्य दोषों का सद्भाव भी होता ही है ।

जिनेश्वर भगवन्त ने अपनी पवित्र साधना से, सात्मा के पूर्ण ज्ञान की अवलम्ब करने वाले समस्त आवरणों की नष्ट करके सर्वज्ञ-सर्वदर्शिता प्राप्त कर ली । उनसे संसार की कोई भी वस्तु छिपी नहीं रहो—चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म, वर्तमान की हो या भूत-भविष्य काल की । वस्तु का अत्यन्त गुप्त सूक्ष्मतम अंश भी भगवान् से छुपा नहीं रहा । इसका प्रमाण हमारे सामने है ।

जिनेश्वर भगवन्त ने वाणी से बोले जाने वाले शब्द को रूपी एवं ग्रहण होने योग्य बनलाया है । शब्द को वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शयुक्त होने तथा वज्राकार प्राकृति होना, मित्राय जिनेश्वर भगवन्तों के ओर किमने बताई ? एकमात्र जिनेश्वर भगवन्त ही ऐसे हैं जिन्होंने भाषा को पुद्गलमय वर्णमन्त्रादि युक्त और निकलते ही लोकान्त तक पहुँचने वाली बनलाया है । भाषा के पुद्गल अनन्त-प्रदेशों (अनन्त परमाणुओं के युक्त) और अमंजस नमय की स्थिति वाले बनलाये हैं । यह भी बताया है कि भाषा के पुद्गल मूँह से निकलने के बाद अक्षर-रूपी अनन्त गुण वृद्धि वाले रूप लोकान्त तक पहुँचने हैं ।

(प्रज्ञापना सूत्र पद ११)

ज्ञान-गुण सम्पन्न हैं। उनमें अज्ञान का रंघ मात्र भी दोष नहीं होता। जो पूर्ण ज्ञानी होता है, वही सच्चा तत्त्व-प्रकाशक हो सकता है। अन्य तत्त्वनिरूपकों के कथन में असत्य का अंश होना सर्वथा सम्भव है। अतएव आराध्य देव वही हो सकता है कि जिसमें अज्ञान-दोष का लेशमात्र भी नहीं हो। जिनेश्वर भगवन्त पूर्णज्ञानी थे। उनमें अज्ञान-दोष था ही नहीं। वे सर्वथा निर्दोष थे।

२ मिथ्यात्व दोष—ज्ञान के अभाव में मिथ्यात्व तो होता ही है। जहाँ तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान नहीं, वहाँ सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। मिथ्यात्व ही के प्रभाव से जाँव पाप को पुण्य और पुण्य को पाप, अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म मानता है। स्यावरकाय जीवों को अजीव और अजीव को जीव, आत्तव को संवर और संवर को आत्तव, बन्ध को निर्जरा और निर्जरा को बन्ध, तथा मुक्ति को संसार और संसार को मुक्ति मानता है। निर्दोष संयम-तप को साधना को 'जड़क्रिया' और साधक को 'क्रियाजड़' कहता है। मिथ्यात्व ऐसा विष है, जिससे आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि गुण विकृत हो जाते हैं। जिस प्रकार कांस्य-पात्र में रखा हुआ दही विपैला हो जाता है, ताम्र-पात्र में रखा हुआ दूध-दही और घृत स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है, इसी प्रकार जहाँ मिथ्यात्व है, वही सामान्य ज्ञान भी नहीं रहता, तब धर्म-प्रकाशक देवत्व तो रहे ही कैसे? अन्य देवों में मिथ्यात्व का सन्द्राव बताने वाले

[illegible][illegible]

一、本報自創刊以來，承蒙各界人士之厚愛，不勝感荷。茲為擴大宣傳，特在各地設立分報處，以便讀者訂閱。凡欲訂閱者，請逕向各分報處接洽，或逕向本報總編輯部接洽均可。

पूर्व ही उस पवित्र आत्मा में मे काम-निकार का बीजांश-वेदोदय—समाप्त हो जाता है । अतएव भगवान् में काम बी भी नहीं होता । वे पूर्णतया निष्काम होते हैं ।

५ हास्य दोष—जिनेश्वर भगवंत में हास्य नहीं होता । मनुष्य हँसता है—मोहनीय और ज्ञानावरण कर्म के उदय से । कोई ऐसी बात देखने-सुनने या जानने आवे जो तत्काल हँसी उत्पन्न कर दे । जिसे सुन कर उ मनुष्य के मन में भी हँसी उत्पन्न हो जाय । यह बात या तो पहले उसके जानने में नहीं आई हो । यदि पहले सुनी देखी हो, तो भी विस्मरण हो गया हो, और हँसी उभाड़ने के कलापूर्ण ढंग से प्रस्तुत हुई हो, तो हँसी आना स्वभाविक है । मोहनीय कर्म की अठारह प्रकृतियों में से हास्य भी एक प्रकृति है । परम बीतराग सर्वज्ञ-सर्वदर्शी को हँसी आती ही नहीं । वे भूत ओ भविष्य के सम्पूर्ण ज्ञाता होते हैं । उनसे कोई भी रहस्य छिप नहीं है । अतएव उनको हँसी आने का कोई कारण भी ना है । जो हँसता है, वह मोही है और छद्मस्थ है । जिनेतर दे में यह दोष उनके चरित्र से स्पष्ट होता है । किन्तु जिनेश्व भगवंत इस दोष से सर्वथा मुक्त हैं ।

६ रति दोष—मनानुकूल विषयों के प्राप्त हो पर प्रसन्न होना, सुखानुभव करना, इच्छित वस्तु की प्राप्ति पर तुष्ट होना । भक्तों द्वारा प्राप्त पूजा-सत्कार से संतुष्ट होना । शब्दादि भौतिक सुखद विषयों में आसक्ति-अनुरा

中國經濟史綱 第一章 緒論 第一節 經濟史之定義

經濟史之定義 經濟史者，研究人類經濟生活之變遷及其原因之學也。其範圍包括農業、工業、商業、交通、貨幣、稅收、社會福利等。經濟史之研究，旨在揭示經濟發展之規律，為現代經濟建設提供借鑒。

經濟史之重要性 經濟史之研究，對於了解人類社會之發展，具有極高之價值。通過研究經濟史，我們可以瞭解不同時期之經濟結構、生產力水平、社會制度等，從而揭示經濟發展之動力與規律。

經濟史之研究對象 經濟史之研究對象，為人類之經濟生活。其內容包括生產、分配、交換、消費等各個環節，以及經濟制度、經濟政策等。

經濟史之研究方法 經濟史之研究方法，包括文獻研究、考古研究、統計分析等。文獻研究是經濟史研究之基礎，通過對歷史文獻之整理與分析，可以瞭解過去之經濟狀況。

經濟史之研究意義 經濟史之研究，對於現代經濟建設具有極高之意義。通過研究經濟史，我們可以瞭解經濟發展之規律，為現代經濟建設提供借鑒，促進經濟之持續發展。

होना अथवा प्रकाश हो भयप्रद निम्न उत्पन्न होना ।

आजीविका भय—जीविका के साधन विनष्ट होने का भय । अथवा वेदना भय—रोग से उत्पन्न दुःख । इसके प्रतिकार के लिए इन्जोशन आपरेशन आदि से भयभीत होना ।

अपयश भय—अपयश, बदनामी, प्रतिष्ठा में होने वाला हानि का भय । ६।

मृत्यु भय—मरने का डर । ७।

भयभीत होने वाली आत्मा अशक्त होती है । उस मन में धन, कुटुम्ब, शरीर आदि के प्रति मोह होता है । इस उनकी रक्षा का डर बना रहता है । अन्य देवों के हाथ शस्त्र होने का कारण भय ही है । श्रीजिनेश्वर भगवंत प्रकार के भय से रहित—निर्भय होते हैं ।

१० जुगुप्सा दोष—बीभत्स्य दृश्यों, विष दुर्गन्धी वस्तुओं, कणकट शब्दों, स्वादहीन अथवा अप्रिय खाने वाले खान-पान, असह्य स्पर्शादि से घृणा होना । अन्य देव दोष से मुक्त नहीं थे । जिनेश्वर भगवंत में यह दोष भी होता ।

११ राग दोष—प्रिय वस्तु पर राग—स्नेह हे भवतों पर अनुराग कर के उन्हें वरदान देना, उनका इच्छा कार्य करना आदि राग-दोष है । क्रोध और मान कषाय, के अन्तर्गत है । जिनेश्वर भगवंत इस राग—स्नेह—प्रेम से सर्वथा वंचित हैं ।

（一）
（二）
（三）
（四）
（五）
（六）
（七）
（八）
（九）
（十）
（十一）
（十二）
（十三）
（十四）
（十五）
（十六）
（十七）
（十八）
（十九）
（二十）
（二十一）
（二十二）
（二十三）
（二十四）
（二十五）
（二十六）
（二十七）
（二十八）
（二十九）
（三十）
（三十一）
（三十二）
（三十三）
（三十四）
（三十五）
（三十六）
（三十七）
（三十八）
（三十九）
（四十）
（四十一）
（四十二）
（四十三）
（四十四）
（四十五）
（四十六）
（四十七）
（四十八）
（四十九）
（五十）
（五十一）
（五十二）
（五十三）
（五十四）
（五十五）
（五十六）
（五十七）
（五十八）
（五十九）
（六十）
（六十一）
（六十二）
（六十三）
（六十四）
（六十五）
（六十六）
（六十七）
（六十八）
（六十九）
（七十）
（七十一）
（七十二）
（七十三）
（七十四）
（七十五）
（七十六）
（七十七）
（七十八）
（七十九）
（八十）
（八十一）
（八十二）
（八十三）
（八十四）
（八十五）
（八十六）
（八十七）
（八十八）
（八十九）
（九十）
（九十一）
（九十二）
（九十三）
（九十四）
（九十五）
（九十六）
（九十七）
（九十八）
（九十九）
（一百）

कर मनुष्य हमारे अक्षितशाली में जाता है और उसमें सुरक्षित रहने के लिये विविध प्रकार के शस्त्र धारण करता है। उन्हीं शस्त्रों में भी होते हैं, जिनमें वे मारते हैं। यह स्थिति भौतिक-लगाव के कारण होती है। पुद्गलानन्दीपन के कारण ऐसी स्थिति बनती है और यह दशा जिनके देवों के चरित्रों में स्पष्ट दिखाई देती है।

वीर्य—शक्ति तीन प्रकार की है—१ बाल-वीर्य २ पण्डित-वीर्य और ३ बाल-पण्डित-वीर्य।

वीर्यान्तराय का अर्थ है—शक्ति का प्रवरोध। अन्तराय के क्षयोपशम से शक्ति का कुछ विकास होता है और क्षय में होता है—परिपूर्ण विकास।

बालवीर्य का अर्थ है—आरम्भ-परिग्रह विषयविकार और कषाय पर कुछ भी आत्म-नियन्त्रण नहीं रखने वाला अविरत जीव। प्रथम गुणस्थान से लगा कर चतुर्थ गुणस्थान तक के सभी अविरत जीव 'बालजीव' है।

पण्डित-वीर्य—आरम्भ-परिग्रह, विषय-विकार और अठारह पाप के त्यागी सर्वविरत साधु-साध्वी। गुणस्थान १ से १४ पर्यन्त चारित्र्य-सम्पन्न।

बाल-पण्डितवीर्य—आरम्भ-परिग्रहादि के अंश रूप में त्यागी। पंचम गुणस्थानी देश-विरत श्रावक।

उपरोक्त तीनों भेद विरति की अपेक्षा से है, शारीरिक श्रयवा आर्थिक सम्पन्नता की अपेक्षा से नहीं। भौतिक अपेक्षा तो कई बालवीर्य वाले भी शेष दो से बढ़-चढ़ कर होते हैं।

“उमंगों विमलें भाग्य, सख्तोपपन्न करी” (भा. १६) और
तथा—“सख्यणू निगमपलरी” (भा. १७)

किन्तु सूर्य की उमंग भी एकदशांग है। यद्यपि सूर्य अपने प्रभावक्षेत्र को प्रकाशित करता है, परन्तु उमंग प्रकाश को आवरण से रकता है और वस्तु की ऊपरी सतह को ही प्रकाशित करता है। सूर्य के प्रकाश से प्रभावित भाग बहुत बड़ा है और सूर्य तो अस्त भी होता है, बादल उन रक देता है और ग्रहण लग कर बदरंग कर देता है। किन्तु केवलज्ञान ने प्रकाशित कोई वस्तु और उसको कोई भी पर्याय नहीं रहता। केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद सदा स्थायी—अपरिवर्तित रहता

吳東坡先生詩集卷之四
 蘇軾詩集卷之四

一、關於我國經濟建設之重要問題
 二、關於我國經濟建設之重要問題
 三、關於我國經濟建設之重要問題
 四、關於我國經濟建設之重要問題
 五、關於我國經濟建設之重要問題
 六、關於我國經濟建設之重要問題
 七、關於我國經濟建設之重要問題
 八、關於我國經濟建設之重要問題
 九、關於我國經濟建設之重要問題
 十、關於我國經濟建設之重要問題

蘇軾詩：「何處哀歌似斷腸，
 慙慙此意正堪傷。東風不與西風
 便，猶道花開萬木芳。」
 蘇軾詩：「東風不與西風便，
 猶道花開萬木芳。」

थे। उनका चारित्र्य उत्तम था और वे निरन्तर बेलें-बेलें तपस्या करते रहते थे। उनकी छोटी-सी भूख के लिए आनन्द नामक श्रावक के पास (जो श्री गौतमस्वामी को गुरुनीय वन्दनीय एवं पूज्य मानता था) अपनी भूल सुधारने का क्षमा-याचना करने भेजा। भगवान् के मन में अपने प्रशिष्य एवं प्रथम गणधर के प्रति रागभाव होता, तो बेलें तप के पारण के लिये लाये हुए माहार को यों ही धरा रहने कर आनन्द श्रावक को खमाने नहीं भेजते। कम से कम यह कहते ही कि—“अरे गौतम ! तू बेलें का पारणा पहले ले, फिर खमाने जाना,” अथवा “यहीं से खमा ले।”

गोशालक ने भगवान् महावीर प्रभु के दो शिष्यों जला कर भस्म कर दिया और भगवान् पर भी तेजोलिप्या छेयी। प्रभु को छह मास तक व्याधि रही, परन्तु भगवान् मन में गोशालक पर तनिक भी रोष नहीं आया। भगवान् श्री गौतमस्वामी आदि अनेक ऐसे शक्तिशाली शिष्य थे गोशालक को क्षणमात्र में राक्ष का ढेर बना सकते थे। पर भगवान् की शिक्षा के अनुसार सभी शान्त एवं समभावयुक्त रहे। ये उदाहरण उनकी परम धीतरागता के प्रकट प्रमाण हैं।

संसार में अनादि-काल से जन्म-मरण, रोग-शोक, विष-गादि दुःख सहते और रखड़ते-भटकते हुए जीव को शाश्वत अनन्त सुखों का मार्ग बताने वाला यदि संसार में कोई है, त

ऐसे अरिहंत भगवान् प्रथम तत्त्व के रूप में हमारे लिए परम आराध्य हैं। इन्हीं से धर्म की उत्पत्ति होती है। इन्हीं के बताये मार्ग पर साधु, साध्वी, आचक और आचिका रूप चतुर्विध संघ चल कर अपना आत्म-कल्याण करते हैं। इन्हीं के उपदेश का संकलन कर के गणधर भगवंत आगमों की रचना करते हैं, और आचार्य उपाध्याय एवं साधु-साध्वी इन्हीं आगमों के अनुसार हमें उपदेश देते हैं।

ऐसे परम आराध्य अरिहंत भगवतों के चरणों में हमारी बारबार वन्दना है।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि एक दरिद्र को अनमोल रत्न मिलने के समान हमें अनायास ही जिनेश्वर देव का परम पावन धर्म-रत्न मिला है। हमारा जन्म जैनकुल में हुआ और अरिहंत भगवंत जैसे सर्व श्रेष्ठ देव-तत्त्व की आराधना का उत्तम अवसर मिला है। इस उत्तम अवसर को भौतिक चका-चाँद और कुतर्कियों के मायाजाल में उलझ कर खो नहीं देना चाहिये। जिस प्रकार रत्नादि सम्पत्ति को लूटने वाले चोर-लुटेरे बहुत होते हैं, उसी प्रकार धर्म-धन को लूट कर हमें जिनधर्म से वंचित करने वाले, भौतिकवाद में उलझे हुए मिथ्या-दृष्टि कई हैं। उनसे सावधान रहना चाहिए।

गुरु तत्त्व

देव-तत्त्व धर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल है और गुरु-तत्त्व उसकी शाखा-प्रशाखा है। भरत-क्षेत्र में इस काल में देव-तत्त्व

से प्राप्त हुआ है। उस पद पर रहे हुए पापों तपों, पुण्य-पद पर सुशोभित हैं।

प्राचार्य भगवंत के बाद उपाध्याय भगवंत महामन्त्र के चौथे पद पर आसीन हैं। वे अज्ञान के धारक, बहुभूत परीक्षाओं होते हैं। साधु-गाधियों को अज्ञान का अभ्यास करने वाला उनका मुख्य कार्य है। ये महत्तमा भी हमारे गुरुपद पर हैं।

महामन्त्र के पाँचवें पद के स्वामी सर्वत्यागी अमण-निग्रय भी गुरु-पद के धारक हैं।

पाँच महाव्रत और पच्चीस भावनाओं से युक्त, रात्रि-भोजन का सर्वथा त्याग, पाँच समिति तीन गुप्ति के पालक, नववाङ्मय-युक्त ब्रह्मचर्य के धारक और सत्तरह प्रकार के संयम का पालन करने वाले होते हैं। संयम के सत्तरह प्रकार ये हैं; —

१-९ पृथिवीकायादि पाँच स्थावर, वेदद्रियादि चार व्रत, ये ९ जीवकाय की यत्न करना, इन्हें किसी प्रकार का क्लेश एवं खेद नहीं पहुँचाना।

१० अजीवकाय संयम—वस्त्रादि उपकरण बहुमूल्य नहीं लेना, आवश्यक उपधि से विशेष नहीं रखना, वस्त्रादि पर मूच्छा नहीं रखना।

११ प्रेक्षा संयम—चलते-फिरते, सोते-बैठते, वस्त्रादि उठाते-रखते सावधानी पूर्वक देखना।

१२ उपेक्षा संयम—असंयम के कार्यों में उपेक्षा करना,

सत्परा पर नरु कर निहार नहीं करता ।

साधु जीवन को शुद्ध निराला एवं पूर्ण संयमी एवं उन्नत बनाने के लिये आत्मों में जो विधि बताई के अद्वितीय है । अन्य किसी भी मत के आत्मों में इस प्रकार की विधि नहीं दिखाई देगी । परमेष्ठी महामन्त्र के आराध्य पर पर स्थित महान् साधक तभी बन सकते हैं जब कि वे प्रपत्ता ध्येय और आचार शुद्ध रहें और सभी दोषों से अचल हुए आत्मा को विशुद्ध बनाने में ही लगे रहें ।

अनगार-धर्म ही ऐसा है जो समस्त पापों से मुक्त हो कर संवर-निजंरा रूप धर्म का पालन पूर्ण रूप से करता हुआ निरन्तर मोक्ष की ओर गति करता रहता है । चाहे सामान्य साधु हो, या आचार्य-उपाध्याय, साधुता के गुण तो सभी होना ही चाहिये, तभी वह वास्तव में श्रमण-निग्रन्थ होता है और तभी परमेष्ठी महामन्त्र में स्थान पा सकता है ।

साधु का बहुत पढ़ा-लिखा एवं उपदेष्टा होना अनिवार्य नहीं है, परन्तु आचार-विचार का निर्मल होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है । और उपाध्याय एवं आचार्य-पद के स्वाामी का तो श्रुतधर-अर्थधर एवं विद्वान् उपदेष्टा होना अनिवार्य है । आचार-विचार के साथ आगमों का ज्ञाता हो तभी आचार्य-उपाध्याय हो सकता है । स्व-सिद्धांत के साथ पर-सिद्धांत का ज्ञाता हो, प्रभावशाली हो, धीरवीर, गम्भीर, सहनशील आचार्य, उपाध्याय, गणि, गणावच्छेदक महात्मा भी

आत्म-शुद्धि का मूल--तत्त्वत्रयी

- ८ तप--इच्छानिरोध रूप तप सदैव करते रहना ।
 - ९ त्याग--परिग्रह का त्याग करना । भौतिक इच्छा ममत्व छोड़ना ।
 - १० ब्रह्मचर्य--विषय-वासना का त्याग कर नौ वा युक्त ब्रह्मचर्य का पालन करना ।
- उपरोक्त श्रमण-धर्म का पालन करने वाले साधु साध्वियों के श्रमण-जीवन में परीपह--कठिनाइयाँ, विपत्तियाँ आती रहती है । वे परीपह ये हैं; —

परीपह-जय

निर्ग्रन्थ-जीवन सुखशीलियापन का नहीं है । वह आराम तलबी से विमुख हो कर आत्मा की स्वतन्त्रता के लिए जूझने का जीवन है । यह युद्ध दो आत्माओं का नहीं, किन्तु आत्मा और अनात्मा का युद्ध है । अनात्मा (जड़) के संयोग से आत्मपराधीनता के अनन्त बन्धनों में बन्धा हुआ है । सम्पद्दर्शन रूपी प्रकाश ने आत्म-मान जगा दिया । आत्मा को अपनी अवस्था का भान हुआ । अब वह जड़ का बन्दी रहना नहीं चाहता । ऐसे जाग्रत और सावधान बने हुए आत्मा ने पहले तो अपने बाह्य बन्धन तोड़े अर्थात् धन-सम्पत्ति और कुटुम्ब-परिवार रूप मंसार से स्वतन्त्र हुआ । अब उसे आभ्यन्तर बन्धन तोड़ना है । पाँच शरीर रूप बन्धन को तोड़ कर उसे सर्वथा स्वतन्त्र होना है ।

राह चलते मिथ्यारी को साम्राज्य का अधिपत्य मिलना

（此處有模糊不清之文字，疑似為序言或引言部分）

一、關於本會之宗旨，本會以研究學術，改進社會，為其宗旨。凡我會員，應各盡其力，以達此目的。

二、關於本會之組織，本會設會長一人，副會長二人，秘書一人，財政一人，庶務一人，各負其責。

三、關於本會之經費，本會經費由會員捐助，及社會捐助，並由本會自行籌措。

四、關於本會之活動，本會定期舉行會議，並舉辦各種學術講座，社會服務等活動。

五、關於本會之紀律，本會會員應遵守本會章程，如有違反，將受處分。

以上為本會之基本章程，凡我會員，應各遵行。此致 全體會員。

本會為促進學術研究，特設研究會，凡我會員，如有研究心得，請隨時向本會報告。

本會為改進社會，特設社會服務部，凡我會員，如有社會服務之機會，請隨時向本會報告。

本會為籌措經費，特設籌款委員會，凡我會員，如有籌款之機會，請隨時向本會報告。

本會為遵守紀律，特設紀律委員會，凡我會員，如有違反紀律之行為，請隨時向本會報告。

以上為本會之各項規定，凡我會員，應各遵行。此致 全體會員。

५५ का मूँड—नर नयनो

उन्हें निवारण भी नहीं करना ।

६ अनेक—आवश्यक वस्तुओं के नहीं मिलने पर हों वाला कष्ट सहना । वस्तु फट गये हों, गल गये हों और मर्यादा नुसार निर्दोष वस्तु नहीं मिले, तो खीनता नहीं लाना ।

७ अरति—प्रावश्यक आहारादि प्राप्त नहीं होने पर मन में खेद नहीं करना । विहार से थकने पर ग्लानि का अनुभव नहीं करना, किन्तु धर्म में विशेष सावधान होना ।

८ स्त्री—साधुओं का स्त्रियों (साध्वियों की अपेक्षा पुरुषों) की ओर आकर्षित होना अनिष्टकर है । इसलिए स्त्रियों के रूप आदि अनुकूल—लुभावने विषयों की ओर आकर्षित नहीं होना और स्त्री मोहित करना चाहे, तो उसके कष्ट सह करते हुए वच कर रहना । (अन्य परीपह प्रतिकूल हैं, तब यह अनुकूल है)

९ चर्या—पाद-विहार (चलने) से होने वाला कष्ट

१० निपट्या—स्वाध्याय-भूमि या कहीं ठहरने के स्थान पर बैठने की जगह अनुकूल नहीं मिल कर विषम अथवा भय-कारक मिले, इससे होता हुआ दुःख ।

११ शय्या—अनुकूल मकान नहीं मिलने से होने वाला कष्ट ।

१२ आकोश—कोई गाली दे, घमकावे, दुर्वचन बोले और अपमानित करे तो सहन करने रूप ।

१३ वध—कोई मारे पीटे, अंग-भंग करे, तो "आत्मा

उमें नाहे नहीं । पूजा-मरहार की इज्जत नहीं करे । यदि जो सत्कार नहीं करे, गन्दना-नमस्कार नहीं करे, तो सिद्ध नहीं होवे (यह भी अनुकूल परीपद है) ।

२० प्रज्ञा—बहुश्रुत ग्रन्थों में जो बातें साधु से बहुत लोग पूछते हैं । कई विवाद करने की भी आती हैं । इससे सि हो कर यह नहीं सोच कि 'इससे तो अज्ञानी रहना अच्छा जिससे कोई पूछे तो नहीं,'—इस प्रकार रोदित नहीं हो शान्ति से सहन करना ।

२१ अज्ञान—परिश्रम करने पर भी पाठ याद नहीं हो ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो, तो अपने प्रज्ञान (विशेष ज्ञान की होने) पर खेद नहीं करे और तपस्या आदि में विशेष प्रयत्न शील बने ।

२२ दर्शन—दूसरे मतावलम्बियों के सिद्धांत, उन ऋद्धि, महत्ता, अधिक मान्यता, बड़े-बड़े अनुयायी तथा उनका प्रभाव देख कर शंका-कांक्षादि नहीं लाना । 'भौतिकवादी, चार्वाक आदि की मान्यता सुन कर यह विचार नहीं करना कि 'परलोक है या नहीं, जिनेश्वर हुए हैं या नहीं, मुक्ति है या सब झूठा वकवाद है । संयम और तप का फल मिलेगा या नहीं'—इस प्रकार शुद्ध श्रद्धा से विचलित करने वाले विचार नहीं कर के शान्ति से सहन करते हुए 'श्रद्धा को परम दुर्लभ' मान कर दृढ़ रहना ।

इन सभी परीपदों को सहन करते हुए संयम-यात्रा में

उसे चाहे नहीं। पूजा-सत्कार की इच्छा नहीं करे। यदि कौं सत्कार नहीं करे, वन्दना-नमस्कार नहीं करे, तो विघ्न न होवे (यह भी अनुकूल परीपह है)।

२० प्रज्ञा—बहुश्रुत अथवा गीतार्थ साधु से बहुतन लोग पूछते हैं। कई विवाद करने को भी आते हैं। इससे विघ्न हो कर यह नहीं सोचे कि 'इससे तो अज्ञानी रहना अच्छा है, जिससे कोई पूछे तो नहीं,'—इस प्रकार खेदित नहीं हो का शान्ति से सहन करना।

२१ अज्ञान—परिश्रम करने पर भी पाठ याद नहीं हो, ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो, तो अपने अज्ञान (विशेष ज्ञान नहीं होने) पर खेद नहीं करे और तपस्या आदि में विशेष प्रयत्न शील बने।

२२ दर्शन—दूसरे मतान्वलम्बियों के सिद्धांत, उनकी कृद्धि, महत्ता, अधिक मान्यता, बड़े-बड़े अनुयायी तथा उनकी प्रभाव देख कर शंका-कांक्षादि नहीं लाना। 'भौतिकवादी, चार्वाक आदि को मान्यता मुन कर यह विचार नहीं करना कि 'परलोक है या नहीं, जिनेश्वर दुष्ट हैं या नहीं, मुक्ति है या नहीं'—इस प्रकार शुद्ध अज्ञान से विचित्र करने वाले विचार नहीं कर के शान्ति से गहन करने दुष्ट 'अज्ञान को परम दुर्लभ' मान कर दुष्ट रहना।

इस सभी परीपहों को गहन करने दुष्ट गंयम-यात्रा में

आदि का उपयोग करना ।

२३ शय्यातर पिण्ड—साधु-साध्वी को ठहरने के नि-
मकान देने वाले—शय्यातर के घर का आहारादि लेना ।

२४ आसंसी—बैठ आदि से बने कुर्सी आदि आदि
पर बैठना ।

२५ पर्यंक—फलंग, खाट, मंचक आदि का उपयोग
करना ।

२६ गृहान्तर-निषद्या—गृहस्थ के घर रोगादि कारण
के बिना ही बैठना ।

२७ गाय-उद्धतन—शरीर पर पीठी आदि का
उबटन करना ।

२८ गृही वैयावृत्य—गृहस्थ की सेवा करना और
गृहस्थ से सेवा करवाना ।

२९ जाति आजीव-वृत्ति—जाति-कुल आदि बताने का
सम्बन्ध जोड़ कर आजीविका करना ।

३० तप्तानिर्वृत भोजित्व—पूर्ण निर्जीव नहीं बने ।
मिश्र पानी का सेवन करना ।

३१ आतुर स्मरण—क्षुधादि से आतुर बन कर अपने
पूरे के गृहस्थ जीवन को याद करना ।

३२ मूल—सचित्त मूल का सेवन करना ।

३३ शृंगधरे—श्रद्धा का सेवन करना ।

३४ दधुधर—गन्ध के टुकड़ों का सेवन करना ।

（此處有模糊不清之文字，疑為序言或引言部分）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第一段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第二段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第三段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第四段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第五段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第六段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第七段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第八段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第九段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十一段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十二段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十三段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十四段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十五段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十六段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十七段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十八段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第十九段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第二十段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第二十一段）

（此處有模糊不清之文字，疑為正文第二十二段）

५१ मायाभ्यंग—शरीर पर तेल की मालिश करना
 ५२ विभूषण—वस्त्रादि से शरीर सुशोभित करना
 उपरोक्त वाचन अनाचारों-दुराचारों को टालने का
 सुसाधु होते हैं। उनकी साधुता निर्दोष होती है। वे बन्धनों
 पूजनीय होते हैं। मुनिवरों का जीवन सीधा-सादा और
 आत्माभिमुख होता है। वास्तविक श्रमण मुखशीलिये, जिन्हें
 लोलुप, दैहिकदृष्टि वाले और विभूषणवादी नहीं होते।
 उपरोक्त अनाचारों से बचते हैं।

नियन्त्रण-दीक्षा ग्रहण करने वाली भव्यात्मा ५५
 कुटुम्ब-परिवार, धन-दौलत और सभी प्रकार के सांसारिक
 सम्बन्ध तोड़ कर उस साधना में प्रविष्ट होती है, जिसका
 संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वे संसार और संसार
 के सभी प्रपञ्चों और वाद-विवादों से पृथक् रहते हैं। उन
 उनकी साधना से सम्बन्ध रहता है। शरीर-निर्वाह के लिए
 आवश्यक आहारादि की याचना करने के लिए वे गृहस्थ
 पास जाते हैं और शारिरिक आवश्यकता पूर्ण कर अपनी साधना
 में लग जाते हैं। उनका ध्येय अनादि से लगे हुए कर्म-मल को
 नष्ट कर जन्म-मरण के कारणों से अपने को मुक्त कर
 परमात्म पद प्राप्त करने का है। साधक समझ चुका है कि—

“यह संसार रूपी समुद्र महान् भयंकर है। इसमें जन्म
 जरा और मृत्यु रूप महान् दुःखों से भरा हुआ क्षुब्ध और
 अथाह पानी है। विविध प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल संयोग

ही है। सभी प्राणी संसार में दुःख भोग रहे हैं—

“अहो दुःखो हु संसारो, जस्य कोसंति जंतवो”

(उत्तराध्यायन ११)

किसी भव्यात्मा ने संसार को अग्निह्वय मान कर सोचा,—

“यह संसार जल रहा है। इसकी ज्वालाएँ फैल रही हैं। जिस प्रकार जलते हुए घर में से असार वस्तु छोड़ कर सार वस्तु निकालने वाला बुद्धिमान् है, उसी प्रकार अपनी आत्मा को बचाने वाला समझदार है।” (भगवती २-१)

इस प्रकार संसार को दुःख का महासागर मान कर, इससे मुक्त होने के लिए निर्ग्रन्थ-महात्मा जैन-प्रव्रज्या अंगीकार करते हैं। यद्यपि वे अपने शरीर को आत्मा के लिए बन्धन न मानते हैं, तथापि धर्म की आराधना भी इस मानव शरीर रह कर ही की जा सकती है और शरीर टिकता है—आहार पानी से। शरीर को भोजन-पानी मिलता रहे, तो वह काम देता रहे। प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवरद्वार में साधुओं के आहार करने का उद्देश्य निम्न शब्दों में बताया है;—

“अक्खोवज्जणाणुलेवणमूयं संजमजायामाया-
णिमित्तं संजमभारवहणद्वयाए भुंजेज्जा, पाणधारणद्वयाए
संजएण समियं एवं आहारसमिइजोगेणं भाविओ भव-
अंतरप्पा।”

जिस प्रकार गाड़ी को चलाने के लिए उसकी धूरी में

(४) संयम पालने के लिए—पूजा आदि सत्प्रकार का संयम अपना देना = देवप्राण वस्तु लेने रखने में यतनापूर्वक बर्तने या संयम जीवन का पालन करने के लिए ।

(५) अपने प्राणों की रक्षा के लिए ।

(६) धर्म-चिन्तन के लिए—प्रातःध्यान को टाल धर्मध्यान में शान्तिपूर्वक लगे रहने के लिए

उपरोक्त छः कारणों से निग्रय-मुनि आहार करते आचारांग १-३-३ में लिखा है कि 'संयम-निर्वाह के' उपयुक्त आहार करे—“जाया मायाइ जावए” तथा गडांग सूत्र अ. ७ गा. २६ में लिखा है कि मुनि संयम की के लिए आहार करे—“भारस्स जाता मुणि भुंजएज्ज दशवकालिक ५-१-९२ में लिखा है कि “संयम पाल मोक्ष जाने के लिए ही आहारादि से शरीर टिकाने का भगवन् महावीर प्रभु ने निर्देश दिया है । साधु आहार तो कर किन्तु 'आहार करना ही चाहिए'—ऐसा उनका नियम है । वे आहार करते हैं, उसी प्रकार आहार छोड़न जानते हैं । उनके आहार-त्याग के निम्न छः कारण, अध्ययन में इसके बाद ही बतलाये हैं ।

(१) रोगोत्पत्ति हो जाने पर ।

(२) उपसर्ग—संकट उपस्थित होने पर ।

(३) ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए । मानसिक :

आहारादि त्याग कर दिया हुआ तब ही प्रभु
मय तप होता है ।

कही तक बतायें । निग्रह-श्रमण के आचार-विचार
से सारे शास्त्र भरे हैं । निष्ठापूर्वक चारित्र्य की आराधना करने
वाले श्रमण इस संसार में हम सब के लिए मंगल रूप है
उत्तमोत्तम हैं, शरणभूत हैं, कल्याणकारी हैं और देव के समान
आराध्य हैं । उनके मंगलमय दर्शन हमारे लिये हितकारी है ।
जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा के आराधक संयमनिष्ठ साधु हमारे
लिये गुरुपद में वन्दनीय और पूजनीय हैं ।

गुरु-पद हमारे लिये परम-पूज्य है । गुरुवर्ग का हम पर
परम उपकार है । गुरुओं की कृपा के कारण ही हम, हमारी
जाति कुल और वंश-परम्परा सुसंस्कारों एवं सदाचार युक्त
रह सके और हम जिनधर्म को प्राप्त कर सके । देव—अरिहन्त
सिद्ध भगवन्तों के समान गुरु—साधु—भी मंगल-रूप है, उत्तम
है और शरणभूत है । हम पर गुरु-पद का महान् उपकार है ।
किन्तु गुरु वे ही वन्दनीय हैं, जो देवाज्ञा को हृदय में स्थापित
कर के पालन करने का रुचिपूर्वक प्रयत्न करते रहते हैं ।
देवाज्ञा के विपरीत आचार-विचार और प्रचार वाले तथा
कथित गुरु इस आराध्य-पद से बाहर होते हैं ।

हमारा भी यह कर्तव्य है कि हम देव-पद आराध्य
गुरु-वर्ग का भक्तिपूर्वक आदर-सत्कार करें । उन्हें अपना परम
पूज्य, परम हितैषी एवं भुक्तिदाता मानें । उनका और उनके
चारित्र्य का पोषण-रक्षण करते हुए अपना हित साधें ।

目錄



第一章 緒論

第一章 緒論

一、本學科之性質與範圍

二、本學科之重要性

三、本學科之發展與現狀

四、本學科之研究對象

五、本學科之研究方法

六、本學科之研究意義

七、本學科之研究展望

八、本學科之研究結論

九、本學科之研究建議

十、本學科之研究附錄

जिसमें आत्मा का हित हो ज्ञानावरण हटते हुए ज्ञान पर्याय विकसित हो, वह स्वाध्याय है।

आत्मा और अनात्मा का स्वरूप, उत्थान और पतन का स्वरूप, लोकालोक, पुण्य-पाप, हीनाचार-शुद्धाचार पुनर्जनन-मुक्ति का उपाय बताने वाले एवं आत्मा को परमात्मा बनाने की विधि बताने वाले शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय है।

स्वाध्याय के पांच भेद हैं—१ वाचना २ पृच्छा परावर्तना ४ अनुप्रेक्षा और ५ धर्म-कथा।

वाचना—सम्यक्-श्रुत पढ़ना-सीखना।

पृच्छा—पढ़े हुए श्रुत को समझने के लिए प्रश्न पूछना।

परावर्तना—सीखा हुआ ज्ञान विस्मृत नहीं होना दुर्लभ हो, इसलिए बार-बार पुनरावृत्ति करना।

अनुप्रेक्षा—सीखे हुए ज्ञान के विषयों पर शास्त्र सुवेद विनियम करना।

धर्म-कथा—आत्म ज्ञान का काम अन्य व्यवसायिक कामों का स्वरूप उनका जो द्वािपात्रना, अर्थात् धर्मोपदेश देना पुनरावृत्ति मुख अ. २२ में स्वाध्याय के इन पांच भेदों का जो वर्णन किया गया है,--

“मन्त्राणां भवेत् ! शीघ्रं किं नमोद ?”

होती है। इसमें कर्म-वशयोग एवं का-म-साध है।

“परिमृणयाणं णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
परिमृणयाणं णं वंजणाइं जणयइ, वंजणलीइं
उप्पाएइ ।

अर्थ—हे भगवन् ! मृत-मांस को पुनःपुनः प्रकृतिकरण से किम फल को प्राप्ति होती है ?

उत्तर—पुनरावृत्ति में निम्न व्यंजन-व्यंजन (गर्भ होकर स्थिर रहने रूप) होता है और व्यंजन-व्यंजन (प्रक्षर एवं पद लब्धि) उत्पन्न होती है।

“अणुप्पेहाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? अणुप्पे
हाए आउ य वज्जाओ सत्त-कम्मपणउओ वणिपबंधण
वद्धाओ सिद्धिलबंधणवद्धाओ पकरेइ दोहकालट्ठिइयाअं
हससकालट्ठिइयाओ पकरेइ तिब्बाणुमावाओ मंदाए
भावाओ पकरेइ, बहुप्पएसगाओ अप्पएसगाओ पकरेइ
आउयं च णं कम्मं सिय वंधइ सिय ण वंधइ, असाया-
वेयणिज्जं च णं कम्मं णो मुज्जो-मुज्जो उवचिणइ,
अणाइयं च णं अणवयगं दीहमद्वं चाउरंतं ससारकंतारं
लिप्पामेव वीईवयइ ।”

अर्थ—अनुप्रेक्षा से क्या लाभ ?

उत्तर—अनुप्रेक्षा से आयु-कर्म के सिवाय फोप सात
कर्म की प्रकृतियों का बन्धन जो दृढ़ हो, वह शिथिल होता है,

一、前次會議時，曾由主席報告，關於本會之發展，及各項工作之進行，均極踴躍，且已見成效。茲將本會之發展，及各項工作之進行，分述如下：

（一）關於本會之發展：本會自成立以來，會員人數，由最初之十餘人，增至現之五十餘人。且已分設各分會，如：青年分會、婦女分會、兒童分會等。此項發展，實為本會之進步，亦為社會之進步。

（二）關於各項工作之進行：本會自成立以來，曾先後舉行各項活動，如：演講、展覽、比賽等。此項活動，不僅豐富了會員之生活，且亦為社會之進步，貢獻良多。茲將各項工作之進行，分述如下：

（一）演講：本會曾先後舉行各項演講，如：關於社會進步之演講、關於兒童教育之演講等。此項演講，不僅豐富了會員之知識，且亦為社會之進步，貢獻良多。

कठिनाई से मिल सकते थे । वे खुद लिखते । बाद में लेखकों से लिखवाये जाने लगे । इतना होने पर भी गृहस्थों—श्रावकों को प्राप्त होना कठिन ही था । श्रावक तो अधिकांश सुन का ही सीखते और स्वाध्याय करते । किन्तु अब तो छापखानों के साधन से गृहस्थों के लिये भी सूत्र सुगम हो गये हैं । वे स्वयं वांच सकते हैं, और जहाँ साधु-साध्वी का विचरण नहीं होता हो अथवा बहुत कम होता हो, वहाँ तो मुद्रित सूत्र ही का अवलम्बन होता है । इन्हीं के सहारे धर्म-संस्कार बने रहते हैं इसलिए वाचना रूप स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये ।

ज्ञान पाँच प्रकार का है । यथा—१ मतिज्ञान २ श्रुतज्ञान ३ अवधिज्ञान ४ मनःपर्ययज्ञान और ५ केवलज्ञान ।

मतिज्ञान—श्रोत-चक्षु आदि द्रव्य-इन्द्रियों और । के द्वारा होता हुआ आत्म-अप्रत्यक्ष—परोक्ष ज्ञान । ग्रह चिन्तन, मनन और धारण करने वाली आत्म-शक्ति—बुद्धि चिन्तन कर निर्णय करने की क्षमता । नन्दोसूत्र में अथा ईहा, अवाय और धारणा से मतिज्ञान के चार भेद किये बुद्धि के १ ओत्पात्तिकी २ वैतयिकी ३ कार्मिकी और ४ पाणामिकी, ये चार भेद हैं । सूत्र में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है ।

इसका दूसरा नाम 'आभिनिवोधिक ज्ञान' है, इति और मन के साधन से बोध प्राप्त हो, वह आभिनिवोधिक है । श्रुत से प्राप्त हुए ज्ञान को ग्रहण करना, चिन्तन कर

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

此等文字，其意甚明，不待多言。其言曰：「此等文字，其意甚明，不待多言。」

ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ — ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ
 ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ
 ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ ଶ୍ରୀମତୀ

भाष्य से—विनय रत्न भगवान् जी की मूर्ति का प्रतिमा
प्रारम्भ करते हैं, तब मादि और अंत कहते हैं, तब मध्यम
और क्षायोपशमिक भाव की ज्योता अनादि-मध्यम स्थिति है।

अथवा—भगवतिष्ठ ह ज्ञान को अपेक्षा साधनपर्यवसित
(सम्यक्त्व प्राप्त करने पर आदि और केवलज्ञान होने पर आदि
का अन्त हो जाता है) और अभव्य को अपेक्षा प्रमादि-अपेक्षा
वसित (उसके मिथ्याभूत का कभी अन्त ही नहीं होता) ।

समस्त जीवों के अक्षर (कैबलजान) का अनन्तवी माप तो सदैव खुला रहता ही है। यदि इतना भी खुला नहीं रहे तो जीव, अजीव ही बन जाय, परन्तु ऐसा कभी नहीं होता।

११ गमिक श्रुत—दृष्टिवाद गमिक श्रुत है। जिस श्रुति में कुछ या किसी पद की विशिष्टता से युक्त एक ही पद बार बार आवे वह गमिक श्रुत है।

१२ अगमिक श्रुत--कालिक श्रुत--जिसके पाठ (विषयों) में एक सदृश्यता कम और भिन्नता अधिक है।

१३ अगप्रविष्ट--आचारांगादि १२ अंग ।

१४ अंग बाह्य--आवश्यक--सामायिकादि छह आव
श्यक और आवश्यक से भिन्न । आवश्यक से भिन्न दो प्रका
का--१ कालिक--उत्तराध्ययनादि और २ उत्कालिक--
दशवैकालिकादि सूत्र ।

1. 關於本報之組織：本報之組織，係由本報之編輯部、採訪部、印刷部、發行部、及營業部等五部所組成。

2. 關於本報之經費：本報之經費，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

3. 關於本報之業務：本報之業務，係由本報之編輯部、採訪部、印刷部、發行部、及營業部等五部所組成。

4. 關於本報之地位：本報之地位，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

5. 關於本報之未來：本報之未來，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

6. 關於本報之過去：本報之過去，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

7. 關於本報之現在：本報之現在，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

8. 關於本報之未來：本報之未來，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

9. 關於本報之過去：本報之過去，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

10. 關於本報之現在：本報之現在，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

11. 關於本報之未來：本報之未來，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

12. 關於本報之過去：本報之過去，係由本報之股東、及社會大眾之捐助所組成。

३ ज्ञान प्राप्त करने वाले को विघ्न उत्पन्न कर बाध
बनने से ।

४ ज्ञान और ज्ञानी से द्वेष करने से ।

५ ज्ञान और ज्ञानी को आशातना करने से ।

६ ज्ञानी से वितण्डावाद करने से ।

उपरोक्त छह कारणों से ऐसे कर्म-मल आत्मा पर लगते हैं कि जिनसे ज्ञान-गुण दब जाता है और निम्न-लिखित दस प्रकार का फल होता है; —

१-५ श्रोत, चक्षु, घ्राण, रस और स्पर्श-इन्द्रिय पर आवरण—मल छा जाता है और ६-१० इन इन्द्रियों से हों वाला ज्ञान भी दब जाता है ।

स्वाध्याय करने वालों को ज्ञानाचार का पालन करना चाहिये । ज्ञान के आठ आचार हैं यथा—

१ कालाचार—अस्वाध्याय काल छोड़ कर कालिका उत्कालिक सूत्रों के स्वाध्याय-काल के अनुसार स्वाध्याय करना

२ विनयाचार—ज्ञान और ज्ञानदाता गुरु (ज्ञानी) व विनय करना ।

३ बहुमानाचार—ज्ञान और ज्ञानी के प्रति हृदय बहुमान रखते हुए आदर-सत्कार करना ।

४ उपधानाचार—त्याग एवं तपपूर्वक सूत्र का वांच करना ।

रहा। जब मनन करने की शक्ति मिली, तो शरीर और इन्द्रियादि तथा कषायादि पर ही विमर्श होता रहा। कुछ बड़े, तो मिथ्यात्व (असत्यत्व) पर विमर्श होता रहा। मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद आदि के विषय में ही विचारणा चलती रही। चारों गति में खाना, पीना, संग्रह करना, काम-साधना और प्राप्त का संरक्षण तथा परिवर्द्धन—यही जीव की प्रवृत्ति रही। सिद्धांत है कि चारों गति के जीव—१ आहार-संज्ञा, २ भय-संज्ञा, ३ मैथुन-संज्ञा और ४ परिग्रह-संज्ञा में लगे हुए हैं। अर्थ और काम पुरुषार्थ में ही जीव उलझा रहा और इसी विषय में विचार-विमर्श करता रहा। जीव ने धर्म के विषय में सोचा ही नहीं। यदि सोचा भी, तो धर्म के रूप में प्रचलित अधर्म की भूल भुलैया में पड़ गया। मिथ्यात्व को ग्रहण कर के अभिग्रहीत मिथ्यात्वो बन गया। कभी सम्यक्त्व रूपी सूर्य का प्रकाश पाया ही नहीं। जब अकाम-निर्जरा से मिथ्यात्व-मोहनीय कर्म की ६६ कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण से कुछ अधिक अत्यन्त दीर्घ-स्थिति के कर्म खपा दिये और मात्र एक कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण कर्म अवशेष रहे, तब भव्य-जीव ने अपूर्वकरण करके सम्यक्त्व सूर्य का प्रथम दर्शन किया।

सम्यक्त्व—शुक्ति पथ का प्रवेश द्वार

मिथ्यात्व, संसार-चक्र में फँसाये रखने वाला है और सम्यक्त्व, मोक्ष के परम सुख प्रदान कर आत्मा को परमात्मा

चारित्र्य धर्म

विरति की आवश्यकता

अविरति--अपराधमानवी कृपाय-वस्तुषु के उत्पत्ति होती हुई आत्मा की निरंतुरता पशुति, अमर्यादित आनन्द आरम्भ--परिमह एवं कामभोग की अपरिमित इच्छा ।

मिथ्यात्व आत्मा से आत्मा का लक्ष्य ही प्रशुद्ध रह है । जब मिथ्यात्व हट जाता है और हेयोपादेय का विवेक हो जाता है, तो मिथ्यात्व की विशाल भूमि पर से ऊपर सम्पत्ति की प्रथम सीढ़ी प्राप्त हो जाती है । एक सीढ़ी चढ़ने के बाद आगे बढ़ने के लिये विशेष प्रयत्न करना पड़ता है । सम्पत्ति की प्रथम श्रेणी तो अनायास भी प्राप्त हो सकती है । अकाम-निर्जरा से अनन्तर कोटाकोटि सागर प्रमाण मोहनीय-कर्म की स्थिति क्षय की जा सकती है । भव्यत्वादि कारणों से अज्ञानपन में ही इतनी निर्जरा होती है । यद्यपि इतनी भारी कर्म-निर्जरा में भी आत्म-पराक्रम होता है और प्रकृति-भद्रता, विनयशीलता, अनुकम्पा आदि शुभ भावों से आत्मा अनन्तानुबन्धी के बन्धन को शिथिल करती हुई यथाप्रवृत्तिकरण तक पहुँचती है । यथा प्रवृत्तिकरण की स्थिति तक पहुँचने के पश्चात् यदि आत्म अन्ध-पुरुषार्थ से भी आगे बढ़े, तो उसकी आंखों पर बन्धी कुं अविवेक की पट्टी अचानक खुल जाती है । यों अन्धे की आँ मिल गई । अब उसने सिद्धपुरपत्तन का मार्ग देख लिया उसकी अन्धी भटकन मिट गई । अब उसे आनन्द का घा

और भोगतृत्व मानता है और मोक्ष तथा उसके उपाय को स्वीकार करता है, तो उसे मोक्ष प्राप्त करने के लिए मोक्ष के उपाय रूप विरति का आदर करना ही चाहिये। आत्मा, आत्मा की नित्यता, कर्मकतृत्व और भोगतृत्व—ये चार बातें न तो साध्य है और न साधना। ये तो अपने आप सिद्ध हैं। इन्हें न मानने से ये अन्यथा नहीं हो जाती और न इनका स्वभाव पलट सकता है। मानते हुए भी इनकी स्थिति में परिवर्तन और आत्मा का उत्थान तथा मुक्ति तब तक नहीं हो सकती, जब तक वाद की दो बातें स्वीकार कर के साधना नहीं की जाय। मोक्ष (आत्मा की परम शुद्ध एवं परिपूर्ण अवस्था) को साध्य मान कर, उसके साधनभूत व्रतादि उपाय मानने पर ही सम्यक्त्व-भूमिका प्राप्त होती है और उस भूमिका से आगे की श्रेणी तभी प्राप्त हो सकती है, जब कि विरति की साधना—उपाय किया जाय। वर्तमान अवस्था में संतुष्ट हो कर बैठ रहना और साधना के प्रति अनास्था रखना, तो सम्यक्त्व भूमिका से भी पीछे हटना है। आराध्य और आराधना में अद्वा होना सम्यक्त्व है—प्रथम श्रेणी है और आराधना के द्वारा साध्य की ओर बढ़ना—विरति है।

वर्तमान स्थिति में संतुष्ट रहने की बात भी एक प्रकार से भुलावा है। किसी को अनायास लाभ हो जाय, तब वह उस अर्थ-लाभ को छोड़ नहीं देता। पास में यथेष्ट होते हुए भी अनायास हुए लाभ को वह लेता ही है। यदि वह विरत

मदनराज के सामने बाकी वन पर जम जाती है । युवती सौंदर्य देग कर मदनराज बनकरा जाता है । मुन्दरी का आसर्प उनके मन को प्रपन्नी और भिन्नता है । मदनराज प्रनतिता से अत्र तक बचा रहा था । अतएव वह सामने बैठी हुई युवती से बोलने में भी हिचक रहा था । किन्तु उस मुन्दरी ने मदनराज की हिचक दूर कर दी । युवती ने पूछा--"आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"मैं दिल्ली जा रहा हूँ । आप ?"

"मैं भी दिल्ली जा रही हूँ । अच्छा है--आपका और हमारा साथ रहेगा । दिल्ली में कहाँ ठहरेंगे--आप ?"

घनिष्टता बढ़ती है । दिल्ली स्टेशन पर उतरते समय तो दोनों चिर परिचित आत्मीय जंसे बन जाते हैं और एक ही होटल में ठहरते हैं । दूसरे दिन डेढ़ पहर दिन चढ़ने पर युवक की नींद खुलती है और वह अपने आपको अकेला पाता है । वह कोकिला को अपने पास नहीं देखता है, तो सोचता है--'सोच गई होगी या स्नानगृह में होगी ।' प्रतीक्षा असह्य होती है और वह खोज करता है । उसकी आँखें तब खुलती हैं, जब वह समझता है कि कोकिला उसकी हीरे की अंगुठी, गले की माला, मूल्यवान् घड़ी और लगभग १७०० के नोट सहित बटवा भी पार कर के उसे नंगा-नवाव बना गई है । वास्तव में वह मुन्दरी एक ठग-मण्डली की सदस्या थी । ठग-मण्डली इस ताक में रहती थी कि कोई मालदार आसामी सेकण्ड या फर्स्ट

अन्या मनुष्य जिनका पापें या कृष्ण की ओर लड़ रहा हो उसे कोई सुखता मनुष्य उसे होने वाले दुःख से बचाने के लिए नई मार्ग बताये, जो उसे रागी-द्वेषी नहीं कहा जा सकता। उसे को भला और बुरे का भेद, पाप को पाप और धर्म को धर्म बताना न तो रागी-द्वेषी है, न पुराई ही है। जिन वीतराग भगवन्तों ने यह विवेक-बुद्धि प्रदान की, वे संतुष्ट थे। जीवों का हिताहित एवं सुख-दुःख जानते थे। जीवों को दुःखों से मुक्त कर के परम मुक्ति बनाने के लिए उन्होंने हितोपदेश दिया है। उन्हें अपने समान रागी-द्वेषी कहना अज्ञान है।

एकेन्द्रिय जीवों के तो वचन योग भी नहीं है और विकलेन्द्रिय के वचन-योग होते हुए भी मनोयोग के अभाव में सोचने-समझने की शक्ति नहीं है। उनका वचन-योग भी ओषध रूप से होता है। उनमें संज्ञी-श्रुत वाले जीवों के समान सोच समझ कर बोलने की शक्ति ही नहीं है। इसलिये वे मनुष्यों के समान वाणी-व्यवहार नहीं कर सकते। उनकी इस हीनदशा से वे वीतराग नहीं हो गये। यह भी उनकी विवशता ही है। वे अनक्षर-श्रुत के समान कुछ न कुछ बोलते, चीखते, चिल्लाते हैं। इसीसे समझ लेना चाहिए कि विकलेन्द्रियों की यह विवशता है कि वे वचन-योग का ठोक उपयोग नहीं कर सकते। उन्हें विरत मानना सर्वथा अनुचित है।

अत्रत भी आत्मा का महान् शत्रु है। यदि इसका निग्रह कर के विजय प्राप्त नहीं की गई, तो मिथ्यात्व रूपी दवे हुए

दोनों का समावेश हो जाता है । विरति में श्रेष्ठ धर्म तो तत्त्व-विरति—अनगार-धर्म ही है, परन्तु जिन आत्माओं में उत्तम धर्मोपशम नहीं हो, प्रत्याख्यानावरण-मोह के उदय से वह अनगार-धर्म नहीं अपना सकता हो, तो भी अनगार-धर्म में पूर्ण आस्था रखता हुआ और उसकी प्राप्ति की भावना रखता हुआ देशविरत-आवक बने । यथायोग्य व्रत-प्रत्याख्यान करने से वह आगे बढ़ कर पाँचवें गुणस्थान में पहुँच जाता है । पण्डित के कुछ निकट हो जाता है । पाँचवें गुणस्थान में त्रिंशत् एक-छोटे से व्रत का पालक, निम्नतम स्थान पर रहा हुआ आवक भी होता है और साधुता के निकट—सर्वोच्च श्रमणभूषण प्रतिमा का पालक भी होता है, अपनी योग्यता के अनुसार पान्थ प्रणुव्रतादि का पालन अवश्य करना चाहिये । जैन-श्रमणोपशम मनुष्य के लिये प्रणुव्रतों का पालन अत्यंत सुगम है । जैन हि—

प्रथम प्रणुव्रत में वेदन्द्रियादि निरपराध अम-जीवों की रक्षा कर मङ्गल-पूर्वक हिंसा करने का त्याग होना है । अर्थात् जैन-श्रमणव्रत व्यक्ति अम जीव को नहीं मारता । मच्छर, पतंग, गिल्ली, और कीड़ी-मकोड़ी जैसी जीवों का भी नहीं मारता और विषधर गर्भ-विच्छेद आदि को भी नहीं मारता । अर्थात् अम जीवों का पालन करना है । इस प्रकार हमारी उन्नत कुलीनता के लिये अम जीवों का पालन करना है । अर्थात् अम जीवों का पालन करना है । अर्थात् अम जीवों का पालन करना है ।

पमतलियाँ ऊपर की ओर रहे। उन पर मध्य में—अपनी दाहिने हाथ की हथेली नीचे रख ली रखें और उस दाहिने हाथ की हथेली इस प्रकार रखें कि जिससे दोनों हाथों के अंगूठे मिल जायें। उन अंगूठों पर दृष्टि स्थिर रखकर ध्यान करें।

पर्यंकासन—दाहिने पाँव का पंजा बायीं जंघा के नीचे और बाये पाँव का पंजा दाहिनी जंघा के नीचे रख कर—पालथी आसन से बैठ कर—पूर्वोक्त ध्यान-मुद्रा कर लें।

आसन दृढ़, स्थिर और कड़क हो और ध्यान में ईश्वरपथिकी के प्रत्येक पद के अर्थ पर, अपनी प्रवृत्ति में हुए बाधाओं की खोज हो। उतावल चञ्चलता और उकताहट के बिना विधिपूर्वक ध्यान किया जाना चाहिए। ध्यान पालने की विधि करने के पश्चात् लोगस्स का उच्चारण किया जाता है। 'लोगस्स' चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों की स्तुति है और गद्यमय न हो कर पद्यमय (गाथावद्ध) है। इसे गाथा की लय में गाना चाहिये और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े हुए गाना चाहिये। जिनेश्वरों की स्तुति करते समय भी वेगार टालने के समान शीघ्रता पूर्वक और निरादर युक्त—गिनती बोलने की तरफ बोल जाना उचित नहीं है। इससे यथार्थ लाभ नहीं होता।

लोगस्स के पाठ से मोक्ष प्राप्त जिनेश्वर भगवन्तों की स्तवन करने के बाद, यदि त्यागी मुनिराज या महासतीज उपस्थित हों, और उनके स्वाध्यायादि किसी कार्य में बाध

प्रेमा, ध्यान, सात्विक अभ्यास और मित्राभिव्यक्ति किया
सकता है। सामायिक का सत्य प्रारम्भ में ही व्यतीत हो
शुभभावों में आत्म-सन्तुष्टि रहे, नूतन ज्ञान की प्राप्ति हो, या
सीसे हुए ज्ञान की पुनरावृत्ति हो, लेशमात्र भी अशुभ चिन्तन
नहीं हो, सांसारिकता—राजनैतिक, सामाजिक, व्यावसायिक
और कीटुम्विक विषयों को—स्पर्श ही नहीं किया जाय।
साधु-संतों के व्याख्यान में सामायिक की जाती है, परन्तु इस
युग में कई वक्ताओं के व्याख्यान लौकिक हो गये हैं। कई
हास्यादि मनोरंजन से श्रोतागण पर छा जाने का प्रयत्न करते
हैं, जिससे सामायिक भी दूषित हो जाती है और आत्मा में
हास्यमोहनीय आदि छाई रहती है। जिस व्याख्यान में वैराग्य-
रत्न भरपूर हो, हेय-जेय उपादेय का विवेक हो, जीव-अजीव,
आत्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म और बन्ध-मोक्ष का
स्वरूप बतलाया जाता हो, ऐसे व्याख्यान सामायिक काल
को सफल बना सकते हैं।

जिनेश्वर भगवंत का स्तवन-स्तुति या स्तोत्र भी
सरागता बढ़ाने वाले नहीं हो। जैसे कि बाल अवस्था के खेल,
माता के मनोरथ, लग्न आदि संसार अवस्था का रसीला
गायन, राजकुल की विरह-वेदना के काव्य, अरिष्टनेमिजी से
सत्यभामा-रुक्मिणी आदि के फाग खेलने और मोहोत्पादक
व्यंग-व्याण छोड़ने वाले सम्वाद। ये सब उदयभाव की क्रियाएँ
हैं, भले ही इनका सम्बन्ध भावी जिनेश्वर देव से हो। यदि

में नहीं जाने देना । इसके लिए स्मरण-श्रुति स्वाध्याय कुछ भी अवलम्बन लिया जा सकता है, परन्तु विशेष लाभ लिए ध्यान—एकाग्रता बढ़ाने का पुनरायं करना आवश्यक है।

श्री अनुयोगद्वार मूल में सामायिक के पात्र की संज्ञा में पहिचान इन शब्दों में कराई है; —

“जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे ।

तस्स सामादयं होइ, इइ केवलि भासियं ॥१॥

जो समो सब्बभूएसु, तसेसु थावरे सु य ।

तस्स सामादयं होइ, इइ केवलि भासियं ॥२॥”

—जो आत्मा को शांत रख कर मूलगुणरूप संयम उत्तरगुणरूप नियम और अनशनादि तप में लगाये रहता है उसी को सामायिक होती है—ऐसा केवलज्ञानी सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवंतों ने कहा है । जो साधक त्रस और स्थावर—सर्मा प्राणियों—पर समभाव रखता है, उसे सामायिक होती है । ऐसा केवलज्ञानी भगवंतों ने कहा है ।

तात्पर्य यह कि सामायिक में मनोनिग्रह हो कर संयमित होना और प्रशस्त परिणति होना आवश्यक है, तभी वह भाव-सामायिक होती है । बिना भाव-सामायिक के द्रव्य-सामायिक नगण्य रहती है ।

विशेषावश्यक में उपरोक्त ^{सिद्ध} _{जने} गायकों के अतिरिक्त निम्न गायक भी है; —

.....

.....

.....

.....

- १ शोचिक—आत्मनः शोचनं कर्तुं यत्नः ।
- २ शोचोक्त—यत्नः शोचनं कर्तुं यत्नः ।
- ३ शोचोक्त—यत्नः शोचनं कर्तुं यत्नः ।
- ४ शोचोक्त—यत्नः शोचनं कर्तुं यत्नः ।
- ५ शोचोक्त—यत्नः शोचनं कर्तुं यत्नः ।
- ६ शोचोक्त—यत्नः शोचनं कर्तुं यत्नः ।
- ७ शोचोक्त—यत्नः शोचनं कर्तुं यत्नः ।
- ८ शोचोक्त—यत्नः शोचनं कर्तुं यत्नः ।
- ९ शोचोक्त—यत्नः शोचनं कर्तुं यत्नः ।

其目的在於使社會各階級之利益得以調和，而社會之進步得以實現。

社會主義之理想，在於實現社會之平等與和諧，使每個人都能享有基本之權利與自由。

社會主義之實踐，在於通過社會改革與社會運動，實現社會之進步與發展。

社會主義之價值觀，在於強調社會之集體利益與個人利益之統一。

社會主義之目標，在於實現社會之繁榮與昌盛，使每個人都能享有美好之生活。

社會主義之精神，在於追求社會之公平與正義，使每個人都能享有平等之機會。

社會主義之力量，在於團結社會各階級之力量，共同為社會之進步而奮鬥。

社會主義之光輝，在於照亮社會之未來，使每個人都能享有光明之希望。

社會主義之偉大，在於實現社會之大同世界，使每個人都能享有和平與安寧。

社會主義之永恒，在於追求社會之進步與發展，使每個人都能享有美好之未來。

社會主義之理想，在於實現社會之平等與和諧，使每個人都能享有基本之權利與自由。

१ निरालस—बसने, खोजने से पूर्व जमीन-हो कर खोजना ।

२० मृगमृग—स्पन्द साधु के नहीं जोन कर मुगमुग इस प्रकार जन्म सम्बन्धी सेवा को समझ कर इस त्याग करने से जन्म सम्बन्धी अतिनाद नहीं लगता ।

३ कायगुहप्रणिधान—शरीर सम्बन्धी बुरी कि करना । बिना पुंजी जमीन पर बैठना, शरीर से साधक कि करना । इस अतिनाद के बारह भेद इस प्रकार हैं—

१ कुप्रासन—पाँव पर पाँव चढ़ा कर इस प्रकार बैठना जिससे मुक्तजनों का प्रविनय हो ओर अभिमान प्रकट हो ।

२ चलासन—अस्थिर आसन, बारबार आसन बदलना

३ चलदृष्टि—दृष्टि को स्थिर नहीं रख कर इधर उधर देखते रहना ।

४ सावद्यक्रिया—पापकारी क्रिया करना, संकेत करना सांसारिक कार्य अथवा घर की रखवाली आदि करना ।

५ आलम्बन—अकारण दिवाल, खंभा आदि का सहारा ले कर बैठना ।

६ आकुंचनप्रसारण—बिना कारण हाथ-पाँव फैलाना और समेटना ।

७ आलस्य—आलस्य से शरीर को मोड़ना ओर

한글을 쓰는 법을 배우고 싶다.

저는 한글을 배우고 싶지만, 한글을 배우는 데 시간이 많이 걸릴까?

네, 한글은 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

한글을 배우는 데 시간이 걸리지만, 배우면 좋습니다.

一、論。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。

二、論。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。

三、論。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。

四、論。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。此篇之旨，在於論及天下之理，而論及天下之理，則必先論及天下之理之所在。

साधना है । पोषध के चार भेद इस प्रकार हैं;—

१ आहार त्याग पोषध—चारों प्रकार के आहार का त्याग करना ।

२ शरीर संस्कार त्याग पोषध—स्नान, मंत्र, उबटन, पुष्प-माला तथा ग्राम्भूषणादि का त्याग करना—शरीर की शोभा बढ़ाने वाली प्रवृत्ति नहीं करना ।

३ ब्रह्मचर्य पोषध—मेथुन त्याग । उपलक्षण वे श्रोतादि सभी इन्द्रियों के वैषयिक सुख का त्याग कर, ज्ञान-ध्यानादि में रमण करना ।

४ अव्यापार पोषध—आजीविका तथा संसार सम्बन्धी सभी सावध्य योगों का त्याग करना ।

इस प्रकार चार प्रकार का पोषध करके मन को शांत बना लेना, सांसारिक सभी सावध्य कार्यों के भारी बोझ के एक दिन-रात के लिए उतार कर आत्म-शान्ति का अनुभव करना और आत्मा में हलकापन एवं शान्ति का अनुभव करना । यह संसार में तीसरा विश्राम है । (ठाणांग ४-३)

सामायिक की विधि के समान पोषध की विधि के स्वाध्याय, श्रवण, वाचन, पृच्छा, अनुप्रेक्षा, स्तुति, स्मरण, ध्यान, प्रतिक्रमण और अनित्यादि भावनाएँ आदि का चिन्तन करते हुए पोषध का काल आत्मा को धर्म में लगाये हुए पूरा करना चाहिए ।



समझना चाहिए। पाँच प्रकार से कम हो, वह कामें देश-पोषध है।

भान पोषध—प्रौढिक भान—राम-द्वेष अर्थात् आर्त्त-रोद्ध ध्यान को त्याग कर धर्मध्यान में लीन रहना।

भानकों का अर्थ (छः काया) अतः भी देश-पोषध है। भगवती सूत्र १२-१ में संन्यास-पुष्कली प्रकरण में लिखित भोजन कर के पोषध करने के प्रसंग से भी देश-पोषध की परिपाटी सिद्ध होती है।

पोषध में सामायिक करना या नहीं ?

देश-पोषध वाले के सावध-व्यापार किसी अंश में खुला है अथवा सर्व-पोषध में एक करण एक योग आदि से प्रत्याख्यान हो तो सामायिक करना सार्थक है, किन्तु दो करण तीन योग के सर्व-पोषध में, सामायिक का समावेश अपने-आप हो जाता है। जो इस प्रकार का पोषध करे, उसके लिए पृथक् रूप से बिना किसी विशेषता के सामायिक करना, कोई खास महत्व नहीं रखता। निर्दोष रूप से पोषध करने के लिए, पोषध के पूर्व दिन निम्नलिखित दोषों से वचना चाहिए—

- १ पोषध के पूर्व-दिन ठूस-ठूस कर खाना।
- २ पोषध की पूर्व-रात्रि में मैथुन सेवन करना।
- ३ पोषध में प्रवेश करने के पूर्व नख-केश आदि की सजाई करना।

佛告阿闍世。若有人欲得阿耨多羅三藐三菩提者。須臾不可捨離阿彌陀佛。一心繫念。念念不絕。此名念佛。若有眾生。常作此念。不令空過。是人命終。無所畏懼。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。

佛告阿闍世。若有人欲得阿耨多羅三藐三菩提者。須臾不可捨離阿彌陀佛。一心繫念。念念不絕。此名念佛。若有眾生。常作此念。不令空過。是人命終。無所畏懼。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。

佛告阿闍世。若有人欲得阿耨多羅三藐三菩提者。

佛告阿闍世。若有人欲得阿耨多羅三藐三菩提者。須臾不可捨離阿彌陀佛。一心繫念。念念不絕。此名念佛。若有眾生。常作此念。不令空過。是人命終。無所畏懼。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。

佛告阿闍世。若有人欲得阿耨多羅三藐三菩提者。須臾不可捨離阿彌陀佛。一心繫念。念念不絕。此名念佛。若有眾生。常作此念。不令空過。是人命終。無所畏懼。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。

佛告阿闍世。若有人欲得阿耨多羅三藐三菩提者。

佛告阿闍世。若有人欲得阿耨多羅三藐三菩提者。須臾不可捨離阿彌陀佛。一心繫念。念念不絕。此名念佛。若有眾生。常作此念。不令空過。是人命終。無所畏懼。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。阿闍世。如來智慧。甚深難測。若人欲求智慧。當發阿耨多羅三藐三菩提心。專心念佛。終身不捨。是人當得阿耨多羅三藐三菩提。

और गुण भी कर्मों का बन्ध करना—मूर्खता का लक्षण है।

“श्रमण-निग्रन्थों को प्रायुक्त-प्रत्येयणीय आहारादिसे वाला अल्प प्रायुष्य का (अनाशन में या शैथिल्य प्रयत्न प्रभावस्था में ही मरने रूप) बन्ध करता है और निर्दोष आहार देने वाले दीर्घायु का बन्ध करता है। दुषित आहार देने से दुस्तम जीवन रूप दीर्घ आयु का बन्ध होता है और पथ्य कर आहार देने से शुभ दीर्घ प्रायु का बन्ध होता है” (भग. श. ५ उ. ६)।

“श्रमण-निग्रन्थों को प्रायुक्त एषणीय = अचित्त एवं निर्दोष आहारादि प्रतिलाभने वाला श्रमणोपासक अपने कर्मों को निर्जरा करता है” (भग० ८-६)।

यह बारहवां व्रत श्रमण जीवन की अनुमोदना रूप है। जो श्रमण को उत्तम और मंगल रूप मानता है, वही भावपूर्वक श्रमण को प्रतिलाभता है। उनकी पर्युपासना करता है। श्रमण-निग्रन्थ की पर्युपासना से धर्म-श्रवण करने को मिलता है। धर्म-श्रवण से ज्ञान, ज्ञान से क्रमशः विज्ञान, प्रत्याख्यान, संयम, अनासन्न, तप, कर्मनाश, निष्कर्मता और मुक्ति होती है। अर्थात् श्रमण-निग्रन्थों की पर्युपासना का परम्परा फल मुक्ति प्राप्त होना है (भग० २-५) इसलिए अतिथि-संविभाग व्रत का पालन भाव पूर्वक करना चाहिए।



一、關於我國經濟建設之重要意義

我國經濟建設之重要意義，在於能使我國由農業國變為工業國，由貧窮變為富強。

二、我國經濟建設之現狀與問題

我國經濟建設之現狀，雖有進步，但仍存在許多問題，如工業基礎薄弱、農業生產力低下等。

三、我國經濟建設之方針與任務

我國經濟建設之方針，應以發展生產力為中心，實行工業化與農業現代化。

四、我國經濟建設之成就與展望

我國經濟建設之成就，已顯著提高國民生活水平，並為實現社會主義奠定了基礎。

五、我國經濟建設之經驗與教訓

我國經濟建設之經驗，在於堅持自力更生、艱苦奮鬥，並不斷學習先進國家之經驗。

六、我國經濟建設之未來展望

我國經濟建設之未來，充滿希望，我們將繼續努力，為實現中華民族之偉大復興而奮鬥。

七、我國經濟建設之國際地位

我國經濟建設之國際地位，已日益提高，成為世界經濟發展之重要力量。

八、我國經濟建設之理論與實踐

我國經濟建設之理論與實踐，應相結合，不斷探索適合我國國情之發展道路。

九、我國經濟建設之社會保障

我國經濟建設之社會保障，應加強社會福利事業，提高國民生活水平。

十、我國經濟建設之文化建設

我國經濟建設之文化建設，應弘揚中華文化，提高國民文化素質。

十一、我國經濟建設之環境保護

我國經濟建設之環境保護，應加強環境保護意識，實現經濟與環境之可持續發展。

१० उद्दिष्ट भक्त त्याग प्रतिमा—पूर्वोक्त सभी प्रतिमाओं के नियमों का पालन करते हुए इसमें विशेष रूप से ओद्देशिक आहारादि का भी त्याग होता है। वह अपने बालों का उस्तरे से मुण्डन करवाता है, अथवा शिखा रखता है। यदि उसे-कोटुम्बिक-जन, द्रव्यादि के विषय में पूछे, तो वह जानता हो तो कहे कि “मैं जानता हूँ” और नहीं जानता हो तो कहे कि “मैं नहीं जानता।” इस प्रकार वह कम से कम एक दो और तीन दिन तथा अधिक से अधिक दस मास तक इस प्रतिमा का पालन करता है।

११ श्रमणभूत प्रतिमा—पूर्वोक्त दस प्रतिमाओं के सभी नियमों का पालन करने के सिवाय इस प्रतिमा का धारक श्रावक अपने सिर के बालों का या तो मुंडन करवाता है, या फिर लोच करता है (यह उसकी शक्ति पर निर्भर है) इसके अतिरिक्त वह साधु के आचार का पालन करता है। उसके उपकरण और वेश, साधु के समान ही होते हैं। वह निग्रन्थ-श्रमणों के धर्म का बराबर पालन करता है, मन और वचन से ही नहीं, किन्तु शरीर से भी सभी प्रकार की क्रिया करता है। चलते समय वह युग-परिणाम भूमि को देख कर चलता है। यदि मार्ग में उस जीव दिखाई दे, तो उनकी रक्षा के लिए सोच-समझ कर इस प्रकार पांव उठाता और रखता है कि जिससे जीव की विराधना नहीं हो, जीवों की रक्षा के लिए वह अपने पांव को संकुचित अथवा टेढ़ा रख

२ जिस प्रकार भारवाहक, मूठ मूख की सहायता के लिए भार को प्रत्येक एक कर उतार कर विश्राम लेता है उसी प्रकार श्रमणोपासक, मामाधिक और देशात्मिक का पालन करते हुए, उतने समय तक अपने पाप-भार को प्रत्येक एक कर शांति का अनुभव करता है ।

३ जिस प्रकार भारवाहक, अपने बोझ को उतार कर मार्ग में पड़ते हुए नागकुमारादि देवालयों में जा कर विश्राम लेता है, उसी प्रकार श्रमणोपासक, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को प्रतिपूण पोषण कर के, उतने समय अपनी

जैनधर्म का आस्तिकवाद

आस्तिकवाद और नास्तिकवाद, इन दो वादों संसार की समस्त विचारधाराएँ विभक्त हो सकती हैं। आस्तिकवाद का सामान्य अर्थ है—'अस्तित्व स्वीकार करने वाला मन्तव्य' और नास्तिकवाद का अर्थ है—'अस्तित्व अस्वीकार करने वाली विचारधारा'। सामान्यतया एक रूप से आस्तिक या नास्तिक तो कोई भी व्यक्ति मिलेगा। मनुष्य में किसी न किसी विषय में आस्था अनास्था रहती ही है। कम-से-कम अपने जीवन, शरीर टिकाने के साधन—भोजन, पानी, रोग-निवारण के साधन औषधी, माता-पिता, भाई-भगिनो, पत्नी, पुत्रादि तथा सोन-चाँदी, घर आदि सम्पत्ति और दृश्यमान पदार्थों पर आस्था तो सभी को होती है। चन्द्र, सूर्य, वर्षा, जन्म, वचन युवावस्था, मृत्यु, राजा, राष्ट्रपति आदि, अधिकार और अधिकारी, ऐसे बहुत-से विषयों में आस्था रखता है और आत्मा, स्वर्ग-नरकादि अदृश्य वस्तुओं में अनास्था रखता है कोई भी व्यक्ति एकान्त रूप से आस्तिक या नास्तिक नहीं होता। किन्तु आस्तिकवाद और नास्तिकवाद का वाद के रूप में जो प्रचलन है, वह उपरोक्त सामान्य अर्थ से सम्बन्धित

और विशिष्ट घटनाओं का, इस जन्म में बालक को ज्ञान को देना और निदेशों की घटनाएँ कई महीनों तक लगा-प्रकाशित होंगी रही कि जिनमें संप्रहृ कर प्रकाशित कि जाय तो एक स्वतन्त्र पुस्तक बन सकती है और कुछ क्यों तो इस विषय में खोज भी होने लगी है।

मृतात्माओं से सम्पर्क साधने की बातें भी प्रकाश आ चुकी हैं। 'नवभारत-टाइम्स' के रविवारीय संस्करण जुलाई ६४ से अक्टूबर तक के अंकों में उनका प्रकाशन हुआ है और उनके आधार पर स. द. ५-१०-६५ में पृ. ४६३ में लिखा भी है। पूर्वभूत मानने पर पुनर्भव प्रत्येक आप स्वीकृत हो जाता है, क्योंकि वर्तमान भूत, पुनर्भव और मृतात्माओं से सम्पर्क भी पुनर्भव को मान्य कर रहा है।

वास्तव में जीव अमर एवं अविनाशी है, ध्रुव है इसकी अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं। कृत-कर्मानुसार शरीर इन्द्रियादि का संयोग होता है, सुख-दुःख का अनुभव होता है और स्थिति पूर्ण होने पर मरता है—वर्तमान शरीर को छोड़ कर नवीन शरीर धारण करता है।

जीवों की विभिन्न गतियाँ, जातियाँ सुख-दुःख आदि देवता से भी यह मानना पड़ेगा कि वे पूर्वकृत कर्मों का शुभाशुभ फल भोग रहे हैं। एक ही पिता और माता से उत्पन्न दो, चार या पाँच पुत्रों के शरीर के वर्णादि, शरीरबल, इन्द्रियबल तथा बुद्धिबल सम्पन्नता-विपन्नता और सुख-दुःख की विभिन्नता एवं

मोटे-मोटे कामों में भी जो काम होता है, जहाँ का ही काम होता है। अतः ही, जो काम भी जान-बूझकर में भी अथवा अनजाने में होता है। इसमें कोई भी भावना नहीं, न ही भावना रह सकती। यह आत्म-निराकार है। यह एक ही है। इसमें भाव-कर्म होता रहता है। इस भाव-कर्म के प्राकृतिक प्रत्यक्ष-कर्मों में भावना ही कर आत्मा से सम्बन्धित जाती है। यह यही काम होता है।

मोटे रूप से जीव, अपने विभिन्न कृतियों का ही को कर्ता मानता है। जैसे—“मैंने यह भोजन बनाया, मैंने सारीस, धन कमाया, निगाह किया, अन्तर्गत उत्पन्न की, मैंने वाग-वर्गीने, कूट, धर्मशास्त्र और मन्दिरादि बनाये, मैंने प्ररचना की, मैंने सौन्दर्य काव्य रचे, महाकाव्य रचे।” इस प्रकार मनुष्य अपने को कर्ता मानता है। किन्तु इनके सिवाय वह अपने लिए शुभाशुभ कर्मों का सज्जन करता है। भावी सुख दुःख के निर्माण की नींव रख कर चयन कर रहा है इससे उसे ज्ञान ही नहीं है। यह जीव का अज्ञान है।

कर्म करने से ही होता है। किसान खेत में से धान आदि की फसल लेता है, वह कर्ता बने बिना नहीं ले सकता वह खेत में बीज बोने और सींचने आदि के रूप में कर्ता बन ही है। किसी कर्म का कर्तापि प्रत्यक्ष होता है और किसी परोक्ष। प्रत्यक्ष कर्तापि जीव स्वीकार कर लेता है, किन्तु

जीव कर्म-फल का भोक्ता है

जीव एक स्वतन्त्र द्रव्य है, शाश्वत है और अच्छे-बुरे का कर्ता है। इतना मान लेने के बाद जीव को कर्म के फल भोग करने वाला भी मानना ही चाहिए। जीव कर्ता तो परंतु भोक्ता नहीं हो, यह कैसे हो सकता है? किन्तु मनुष्य कुश्रद्धा या अश्रद्धाजन्य तर्क के चक्कर में पड़ कर फल का भोग नहीं मानते। किये हुए कार्यों के प्रत्यक्ष देने वाले फल को तो वे स्वीकार करते हैं, जैसे—मोपधी से रोग-निवृत्ति, विष-भक्षण से प्राणनाश, भोजन करने से भुख मिटना, पानी पीने से प्यास मिटना, गरम वस्त्रों से शीत निवारण और चोरी, जारी, हत्या आदि के फलस्वरूप दण्ड भोग आदि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले कर्म-फल तो नास्तिक और कुतर्की भी मानते हैं, किन्तु परोक्ष-कर्म पूर्व-भवों में किये हुए कर्मों का भवान्तर में होने वाले फल को वे लोग नहीं मानते। यही विवाद का विषय है और यही उनकी भूल है। वे परोक्ष कार्यों के प्रत्यक्ष फल से भी इन्कार नहीं कर सकते। जैसे—किसी ने भोजन, दूध या दवाई में विष मिला कर किसी को खिला दिया। यह विष-दान खाने वाले ने या और किसी अन्य ने नहीं देखा, किन्तु जब उस अदृश्य कार्यों का फल प्रत्यक्ष हुआ, तब वे मान गए कि इसे किसी ने विष दिया—विष दे कर मार डाला है। इस प्रकार परोक्ष कार्यों का प्रत्यक्ष फल

कुल की रूप-सुन्दरियाँ राजा-महाराजा या कोट्याधिराज !
 प्रेम-पात्री और लक्ष्मीदेवी-सी बन कर, एक रानी के सम
 वैभवशालिनी हो जाती थी। इस प्रकार बिना चोरी, डाक
 कालावाजारी आदि के भी धनवान बन जाते हैं। इन वशों
 तो खेती भी धनवान बनने का साधन बन गई। साहुकारों
 व्याज देने वाले, उलटे साहुकारों से व्याज लेने वाले हो गए
 यह सब पुण्योदय के प्रभाव से हुआ। जिनके पाप का उद्धार
 रहा, उन्हें या तो उपयुक्त साधन नहीं मिला, या बीज नष्ट
 मिला, जमीन खराब हो गई, वर्षा न्यूनाधिक हुई, कीड़े लग गए
 खा गए, या फसल चोर ले गए। किसी भी निमित्त से हानि
 गई। हमने देखा है—एक खेत वाले के फसल अच्छी होती है
 तब उसके पड़ोस वाला खेत कमजोर है। उसकी फसल कम
 है। इनमें बाहर दिखाई देने वाले निमित्त ही सब कुछ नहीं
 होते, आभ्यन्तर कारण भी रहता ही है। वह आभ्यन्तर कारण
 शमाशुभ कर्मों का उदय है।

प्रभी फल का प्रकोप हुआ, घर में ५-७ व्यक्ति भोजन
 है। उनमें से कस्यों की फल का कष्ट भोगना पड़ा। वह
 एक की ओर फिर दूसरा-तीसरा, इस प्रकार फल एक-दूसरे
 को लगने लगा। किन्तु घर में एक या दो मनुष्य ऐसे भी रहे
 जिन्हें फल ने स्पर्श ही नहीं किया। छोट का बापू निमित्त
 आभ्यन्तर रहने पर भी वे अप्रभावित रहे। इसका मुख्य कारण
 यह है कि उनके उस समय अमानविद्वतीय-कर्म का उदय

ज्ञानावरण का उदय ? कितना अन्तर है इनमें ? श्रुतके महात्माओं के भी ज्ञानावरणीय की पाँचों प्रकृतियों का उदय रहता है, फिर भी वे कितने ज्ञानी हैं ? श्रुत-सागर के पगामी उन महात्माओं के ज्ञानावरणीय कर्म का कितना परिशोधन और निगोद के जीव का कैसा प्रगाढ़तम उदय ?

चक्षुदर्शनावरण का उदय निगोद के जीवों के भी और मनुष्यों के भी, किन्तु अन्तर कितना ? एकेन्द्रिय से तेजस्विय तक के जीवों के लिए सर्व-धाती और चोरीन्द्रिय-पंचेन्द्रिय के लिए देशधाती । इसमें भी बहुत अन्तर है । किसी के भी होते हुए भी दिखाई नहीं देता और किसी को बहुत कम दिख देता है । किसी पक्षी की दृष्टि मनुष्य से भी अधिक तेज होती है । क्षयोपशम और उदय की विचित्रता देखिये कि कभी उदय विशेष, तो कभी क्षयोपशम भी विशेष होता है । क्षयोपशम वा अंजन या चश्मे का निमित्त पा कर देख सकते हैं और ऐसी क्षयोपशम वाले के उदय का जोर हो, तो चश्मा टूट-फूट खो जाता है । फिर उदय का जोर कम हुआ कि खोया हुआ चश्मा मिल जाय । दुर्बिन प्राप्त कर विशेष सूक्ष्म या अधिक दूर की वस्तु देख सकते हैं । अन्तर मुहूर्त में उदय और अन्तर्मुहूर्त में क्षयोपशम होने योग्य कर्म भी होते हैं । तात्पर्य यह कि उदय का मन्दतम रस भी होता है और तीव्रतम भी, और स्थिति जघन्य काल की भी होती है और उत्कृष्ट काल की भी । उदय स्थान भी अनन्त होते हैं ।

पत्ते, पुष्प, फल और बीज उत्पन्न और नष्ट हो पुनः उत्पन्न और पुनः नष्ट—यह परम्परा चलती है। किन्तु एक दिन ऐसा भी आता है कि वह वृक्ष है, गिर पड़ता है, या काट दिया जाता है। फिर पुष्पादि उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार भव्य जीव कभी ऐसा भी समय आता है कि उसको बन्धन-रहित हो कर मुक्ति हो जाती है।

मनुष्य की वंश-परम्परा कब से है? एक वंश-परम्परा कब से चली? क्या इसका पता चल सकता है? नहीं, शास्त्रों के आधार से यह तो कहा जा सकता है कि मनुष्य अकर्मभूमि से कर्मभूमि हुआ, किन्तु ऐसा समझ नहीं रहा कि जब मनुष्य का अस्तित्व था तो उसकी उत्पत्ति नहीं हुई होगी। वास्तव में मनुष्य की उत्पत्ति अनादि है और वंश-वैल अनादिकाल से चली आ रही है। इस दृष्टिकोण से अधिक दैन्य-योग पौड़ी के दृष्टिकोण से माना जा सकता है, उनके प्राणों का नहीं। किन्तु यह निश्चित हो है कि उनमें पूर्व भी अज्ञान पूर्व में वे मनुष्य ही की उत्पत्ति थे। इस प्रकार वंश-वैल अनादिकाल से चली आ रही है, फिर भी इसका अन्त होना हम देखते हैं। इससे हमें अज्ञान ही नहीं हुई या हा कर मनुष्य ही की उत्पत्ति नहीं होती है। अनादि काल से ही मनुष्य उत्पन्न हो रहा है। अनादि काल से ही मनुष्य उत्पन्न हो रहा है। अनादि काल से ही मनुष्य उत्पन्न हो रहा है।

लोकाग्र का सिद्धस्थान है। मुक्तात्मा वहीं पहुँच कर शांति-पर्यवसित रहती है—संशय निश्चल, परम स्थिर।

नास्तिक लोग मुक्ति नहीं मानते हैं, किन्तु कुप्रास्तिक भी मुक्ति नहीं मानते। उनकी दृष्टि में मुक्ति एक कल्पना मात्र है। एकेश्वरवादियों में से कुछ में मुक्ति की मान्यता है, किन्तु स्वरूप के विषय में भ्रम है। वे एकेश्वरवादियों, मुक्तात्मा को भी ईश्वर से कम दर्जे पर मानते हैं। श्री दयानन्द सरस्वती आदि तो मुक्तात्माओं की पुनरावृत्ति भी मानते थे। विश्वभर में मात्र एक ही ब्रह्म मानने वाले अद्वैतवादी के मत से तो मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। जब एक ब्रह्म के सिवाय दूसरी कोई आत्मा ही नहीं, तो मुक्ति किसकी हो? आत्मा को कूटस्थ, अपरिणामी एवं उत्पाद-व्ययरूप पर्यायों से रहित मानने वाले मत में मुक्ति की मान्यता भी कैसे घट सकेगी? उस मत में न तो बन्धन घट सकेगा, न मुक्ति ही। बौद्ध-मत की स्थिति विचित्र है। वह आत्मा को नहीं मानता। रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार, इन पाँच स्कन्धों के समूह से उत्पन्न होने वाली शक्ति को आत्मा अथवा विज्ञान कहता है और इसे भी प्रतिक्षण नष्ट होने वाला मानता है। फिर भी बोधिसत्त्व के भव एवं पुनर्जन्म स्वीकार करता है। निर्वाण मान कर भी बुद्ध को संसार के निर्वाण के लिए प्रवृत्ति-रत मानता है। जहाँ आत्मा की प्रवृत्ति शेष रह जाती है, वह मुक्ति ही कैसी? प्रवृत्ति होती है—योग से

अपना उत्थान कर लेता है ।

नय स्वरूप

मेरा वक्तव्य

श्रुतज्ञान, नय युक्त होता है । श्रुत के प्रमाण से विषय किये हुए पदार्थों का किसी अपेक्षा से कथन करना, दूसरी अपेक्षाओं का विरोध नहीं करते हुए, अपनी दृष्टि के अनुसार अभिप्राय व्यक्त करना—नयवाद है ।

प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म रहे हुए हैं । उन अनन्त धर्मों में से किसी एक धर्म को मुख्यता से जानने वाला ज्ञान, 'नय ज्ञान' कहलाता है । नय, प्रमाण का एक अंश होता है ।

'जितने वाक्य उतने ही नय'—इस प्रकार नय के अनेक भेद होते हैं । और ये अनेक नय 'सुनय' और 'दुनय'—ऐसे दो भेद में बंट जाते हैं ।

जो नय सम्यग्दृष्टि पूर्ण हो, जिसमें अभिप्रेत नय के अतिरिक्त दृष्टियों का विरोध नहीं होता हो, और जिसमें विपमता नहीं हो—वह 'सुनय' कहलाता है । इसके विपरीत जो अभिप्रेत दृष्टि के अतिरिक्त सभी दृष्टियों का विरोध करता हो, जिसकी विचारधारा में विपमता हो, ऐसे मिथ्या-दृष्टि पूर्ण, एकान्तिक अभिप्राय को 'दुनय' कहते हैं ।

सम्यग् एकान्त से युक्त है, इसमें मिथ्या एकान्त को स्था नहीं है ।

वस्तु को सही रूप में विभिन्न दृष्टियों से समझा के लिए अनेकान्त एक उत्तमोत्तम सिद्धांत है । इसे संशयवा कहना भूल है, और इसका दुरुपयोग करना मिथ्यात्व है आजकल अनेकान्त का दुरुपयोग करके भ्रम फैलाया जा रहा है । यह मिथ्या प्रयत्न है ।

वस्तु को विविध अपेक्षाओं से जानने के लिए अनेकांतवाद उपयोगी है, किंतु आचरण में अनेक दृष्टियां नहीं रहती । वहां तो एक लक्ष्य, एक पथ, एक साधन, एक आराध्य और एकाग्रता ही कार्य-साधक बनेगी । यदि संयम पालन में एक लक्ष्य नहीं रहा और आचरण में अनेकान्तता अपनाई, तो लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकेगी । अनेकान्त के नाम पर मिथ्यात्व, अविरति, असाधुता और ध्येय की विपरीतता नहीं चलाई जा सकती । हेय, हेय है, उपादेय, उपादेय है । अनेकान्त के नाम पर हेय को उपादेय बताने वाले विचार स्वीकार करने के योग्य नहीं हैं । एक की आराधना ही सफलता प्राप्त करवाती है । गुण-स्थानों को चढ़ कर और श्रेणी का आरोहण कर, बीतराज सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तथा सिद्ध दशा वे ही प्राप्त कर सकते हैं—जो अपने ध्येय में दृढ़—निश्चल रह कर प्रगति करते हैं ।

अनेकान्त के नाम पर "सर्व-धर्म-सवभाव" का प्रचार करने वाले भ्रम में हैं । वर्तमान में कई वक्ता और लेखक,

जैनदर्शन और विज्ञान

जैनदर्शन निरूपित सत्त्व अद्वितीय अजोड़ और सर्वोपरि है, स हैं। क्योंकि कि इसका निरूपण परम चीतरागो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेश्वर गवतों ने किया है। इस पर हमें दृढ़ श्रद्धा है, पूर्ण विश्वास है। इस परीक्षा करने का सम्यग्दृष्टियों के मन में तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता संसार में ऐसी कोई कसौटी ही नहीं, जिस पर इन तत्त्वों को परखा जा सके। परन्तु भौतिक-विज्ञान के विकास से प्रकाश में आई कुछ बातों का कई जैनों भी प्रभावित हैं। उनकी दृढमगाती श्रद्धा का स्थिर एवं सुदृढ करने के लिए, यहाँ कुछ पृष्ठ, सम्यग्दर्शन में प्रकाशित कुछ लेखों पर विद्ये जाते हैं, जिन में वैज्ञानिक निष्कर्षों से जैनतत्त्वज्ञान एवं आध्यात्मिक विज्ञान की सत्यता स्पष्ट दिखाई दे रही है। वैज्ञानिकों की भौतिक शोध भी अधूरी एवं एकांगी है। उन्होंने जो कुछ जाना-देखा है, वह आंशिक ही है और आत्मिक एवं अरूपी पदार्थ को सोजने में तो वे सर्वथा असमर्थ ही रहे हैं।

व्याख्याता महानुभावों को इस विषय को ठीक समझ कर श्रोताओं को समझाना चाहिये। इस लेखमाळा के लेखक हैं;—

(श्री कन्हैयालालजी लोढ़ा, एम. ए.)

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। इसमें प्रत्येक सिद्धांत विज्ञान के प्रकाश में निरखा-परखा जाता है। विज्ञान की कसौटी पर खरा न उतरने पर उसे अंधविश्वास माना जाता

ध्वनि के द्वारा अमंग्य योजन क्षेत्र में रहे हुए असंख्य देव-देवी को इन्द्र का आदेश गुनाता है कि—

“भरत क्षेत्र में तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ इन्द्र महाराजा जन्मोत्सव मनाने के लिए भरतक्षेत्र विनिता नगरी जाएंगे। अतएव सभी देव उपस्थित होंगे।”

जब इन्द्र की सुघोषा घंटा बजती है, तो पृथक्-पृथक् लाखों विमानों में रही हुई छोटी-छोटी घंटाएँ भी बजने लग हैं, जिससे सभी देव-देवी स्तब्ध रह जाते हैं, फिर उन घण्टा के नाद से निकला हुआ आदेश गुनते हैं।”

ऐसा ही उल्लेख ‘रायपसेणी सूत्र’ में भी है। आजक की ब्राडकास्टिंग स्टेशन और रेडियो से भी ये अत्यधिक शक्ति शाली हैं।

विना वायुयान आकाश गमन

चारित्र-साधना से प्राप्त आत्म-सामर्थ्य से महात्मा कुक्षियों में आकाश में उड़ कर हजारों-लाखों माइल दूर पहुँच जाते थे—विना किसी वाहन के। ‘विद्याचारण जंघाचारण लब्धि’ की यह शक्ति थी। आज का वायुयान उसकी किसी समानता में नहीं आ सकता। और विद्याधर तो विद्याचालित वायुयान से आकाश में गमनागमन करते ही थे।

आत्मा और पुद्गल की गमन-शक्ति—एक समय में असंख्य योजन पहुँचने की क्षमता जिनागम में वर्णित है।

का मांगलिक दिन है। आज भी अनेक विद्वान राज्य उपस्थित हैं। नागरिक-जन भी बहुत बड़ी संख्या में देखने और समझने के लिए उपस्थित हैं। महारा प्रधानमन्त्री भी पधार कर आसन पर बैठ गए। मह प्रधान मन्त्री से पूछा;—

“महामात्य ! आज शास्त्रार्थ किस विषय पर है

“महाराज ! इस समय लोगों में ‘प्रारब्ध पुरुषार्थ’ चर्चा का विषय बना हुआ है। कुछ लोग कि—सुख-दुःख, जीवन-मरण, लाभ-प्रलाभ, जय-पराजय, अपकीर्ति, सुकृत्य-दुष्कृत्य और धर्म-अधर्म आदि द्वन्द, प्रारब्ध के अनुसार ही होते हैं। कुछ लोग कहते ‘प्रारब्ध (कर्म) से कुछ नहीं होता, जो कुछ होता है पु से ही होता है। पुरुषार्थ तो प्रारब्ध को भी पलट सकता कुछ ‘काल’ को महत्व दे कर अन्य को उपेक्षित करते हैं स्वभाववादी हैं और कई नियतिवादी हैं। इस प्रकार विवाद संसार में चल रहे हैं। इन वादों पर विचार कर निर्णय करना आवश्यक है। आज यही विषय शास्त्रार्थ रखा गया है।”

राजा ने कहा—“विषय तो बहुत अच्छा चुना है आपने। इन विषयों के शास्त्री कौन-कौन हैं ?”

महामन्त्री ने राज्य-पण्डित से कहा—“पण्डितजी आप शास्त्रियों का परिचय दीजिये।”

पक्ष कुशलतापूर्वक उपस्थित करेंगे। इनके शास्त्रार्थ पहले में अन्यत्र हुए हैं, परन्तु सभी अनीर्णित रहे। आज इस समा में ये निर्णायक चर्चा करने के लिये उपस्थित हुए हैं। अब इन्हें अपना-अपना पक्ष स्थापित करने की आज्ञा प्रदान करें ?

कालचन्द्र का कौशल

राज्य-शास्त्री के बैठने पर महामात्य ने कालचन्द्र की सम्बोधित करते हुए कहा—“क्यों भाई कालचन्द्रजी ! जो कार्य प्रारब्ध अथवा पुरुषार्थ से सम्पन्न होते हैं, उन्हें आप काल का ही परिणाम कैसे कहते हैं ?”

अब कालचन्द्र खड़े हुए और अपने सिद्धांत का परिचय देने लगे;—

“महाराजाधिराज, महामन्त्रीजी, पण्डित-प्रवर एवं समस्त समाजन ! काल महाबली है। काल की शक्ति पा कर ही स्वभाव, पुरुषार्थ, कर्म और नियति सफल होती है। काल की उपेक्षा कर के तो कोई टिक ही नहीं सकता। एक मनुष्य ने बहुत मुकृत्य अथवा दुष्कृत्य—पुण्य अथवा पाप कर के शुभ अथवा अशुभ कर्म रूप प्रारब्ध सम्पादन किया, किन्तु उसे उसी समय—कर्म करते समय ही, फल प्राप्त नहीं हो जाता। यदि प्रारब्ध आदि में शक्ति होती, तो कार्य करने समय ही फल दे देते ? परन्तु फल होता है—कालान्तर में। अब काल

की भी स्थिति होती है। स्थिति पूर्ण होने पर पृथक्ता होती ही है। स्थिति भी काल ही है। अतएव समस्त जड़ और चैतन्य पर काल का साम्राज्य अबाध चल रहा है। कर्म को उदय में लाने वाला और उपयुक्त काल तक फल-भोग करा कर मुक्त करने वाला भी काल ही है। विशेष क्या कहूँ मनुष्य को संसार से मुक्त करने वाला भी काल ही है, क्योंकि भवस्थिति पूर्ण हुए बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, वह भवस्थिति भी काल रूप है और उस काल का मैं प्रतिनिधि हूँ। पण्डितजीने सब प्रथम मेरा परिचय दे कर उचित ही किया है, क्योंकि मैं पाँचों में मुख्य हूँ। इसलिये मेरा सिद्धांत प्रबल है—यह आपको मान्य होगा। मैं आशा करता हूँ कि आप मेरा सिद्धांत स्वीक करेंगे।”

अपना पक्ष प्रस्तुत कर पं. कालचन्द्रजी बैठ गये।

स्वभावचन्द्र का कथन

कालचन्द्र के बैठ जाने पर महामन्त्री ने स्वभावचन्द्र को सम्बोधन कर कहा—“कहो पंडित स्वभावचन्द्रजी ! जे काल, प्रारब्ध और पुरुषार्थ से ही सभी कार्य सिद्ध हो सकत हैं, तो आप की आवश्यकता ही क्या है ? आपके बिना कोन-स काम रुकता है ? अपनी आवश्यकता सिद्ध करिये।

स्वभावचन्द्र—“महानुभाव ! क्या आप मेरा सामर्थ्य नहीं जानते ? ये काल, प्रारब्ध और पुरुषार्थ ही क्या, कोई भ

हैं, मच्छियों पानी में अपने स्वभाव से ही तैरती हैं, आकाश में स्वतः उड़ने का स्वभाव पक्षियों का है, सर्प पेट घसीटता हुआ सरकता है, गाय-भैंस आदि पशु अपने चार पाँवों से चलते हैं, मनुष्य दो पाँवों से चलता है, यह सब मेरे—स्वभाव के—अनुसार ही है। पशु-पक्षी के बच्चे जन्म लेने के बाद बोलने-चलने लगते हैं, जब कि मनुष्य के बच्चे को बोलने-चलने में वर्ष-दो वर्ष लग जाते हैं। पक्षियों का जन्म अण्डों के रूप में होता है, किंतु मनुष्यों का जन्म गर्भाशय से होता है। पशुओं में वन्दरों का स्वभाव कूदने-फाँदने का है, वैसा अन्य पशुओं का नहीं है। यह सब भिन्नता स्वभाव से ही उत्पन्न है, काल, प्रारब्ध आदि से नहीं।

अन्न का स्वभाव क्षुधा शान्त कर के पोषण करने का है, पानी प्यास बुझाता है, वटवृक्ष छोटे-छोटे फल देता है और तुम्बे की लता बड़े-बड़े फल देती है, कदल के पुष्प नहीं होते, नीम में कडुआपन, गन्ने में मिष्टता, त्रिप में मारकता, मदिरा में मादकता, मीठल में वमन कराने का और सनाय (सोना-मुखी) में विरेचकता आदि सभी अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही कार्य करते हैं। अपने स्वभाव के विरुद्ध किसी से कोई कार्य करवाने की शक्ति किसी में नहीं है।

कई विषयों में देश-स्वभाव भी कार्य करता है। जैसे—आफ्रिका के हव्सियों का वर्ण काला, युरोपियनों का गोरा। इसी प्रकार देश-विशेष के लोगों के बाल, आँखें और नासिका आदि

सुस्ता और दूसरा चालाक, एक सीमाग्यवंत और दूसरा दुर्मा और एक स्वामी और दूसरा सेवक बनता है, तो क्या यह भेद काल के कारण हुआ, या स्वभाव से ? नहीं, इस द्विधा में तो काल कारण बनता है, न स्वभाव ही । क्योंकि इस प्रकार भेद उत्पन्न करने की इनकी शक्ति ही नहीं है । यह शक्ति मेरी है । मैं ही इस प्रकार के भेद का कारण हूँ । दोनों पुत्रों का जन्म-काल समान है । दोनों ही एक ही पिता के वीर्य और एक ही माता के रज से उत्पन्न हुए हैं । दोनों एक ही माता के उदर में साय ही रहे और जन्म के पश्चात् दोनों एक ही वातावरण में रहे । इसलिए स्वभाव-प्रभाव भी दोनों पर समान ही हुआ । इतना होते हुए भी दोनों में इतनी अधिक भिन्नता दिखाई देती है । इस भिन्नता का कारण मेरे सिवाय और कौन हो सकता है ? मैं दावे के साथ कहता हूँ कि इस भेद का कारण मैं स्वयं ही हूँ । जिसने पूर्व-भव में अच्छे—शुभ-कर्म किये, उसे उसके अनुकूल अच्छे संयोग मिले और जिसने पापकर्म किये, उसे प्रतिकूल संयोग प्राप्त हुए । सत्य ही कहा है कि—

“कर्म प्रताप तुरंग खिलावत, कर्म से छत्रपति पन होई ।
 कर्म से पुत्र सुपुत्र कहावत, कर्म से ओर बड़ो नहीं कोई ।
 कर्म फिर्यो जव रावण को, तव सोने की लंक छिन में ही सोई ।
 आप बड़ाई करो कहा मूरख, कर्म करे सो करे नहीं कोई” । १।

कोई राजा, कोई रंक, कोई रोगी, कोई निरोग, कोई धनवान, कोई दरिद्र, एक पालकी में बैठ कर चलने वाला,

हैं। एक दीर्घायु होता है, तो दूसरा युवावस्था में ही मर जाता है। इस प्रकार के समस्त चमत्कार मेरे ही हैं। मेरे सिवा और किसी में यह शक्ति नहीं है। मैं जिस पर प्रसन्न होता हूँ, उसे सभी इच्छित पदार्थ मिलते हैं और जिस पर मेरा क्रुद्धादृष्ट हो जाती है, वह लुट जाता है, वरवाद हो जाता है। राजा को रंक और रंक को राजा बनाने वाला मैं ही हूँ। मैं सिवाय ऐसा कोन शक्तिशाली है जो मनुष्य ही नहीं, पशु पक्षियों को भी स्वर्गीय सुख प्रदान कर दे ? यदि मैं किसी को नरक के गहन गर्त में धकेल कर घोर दुःख देना चाहूँ, तो क्या काल या स्वभाव उसे बचा सकेगा ?

जीवों को प्राण-शक्ति मैं ही प्रदान करता हूँ। एकेन्द्रिय से निकाल कर पंचेन्द्रिय की उच्च-जाति में मैं ही प्रतिष्ठित करता हूँ और यदि कुपित हो जाऊँ तो पंचेन्द्रिय के उच्चासन से पटक कर एकेन्द्रिय के निगोद के गोले में भी मैं ही फेंक देता हूँ। शरीर स्वास्थ्य, मनोबल एवं बौद्धिक-विकास करने वाला मैं ही हूँ और इससे उलट-विनाश भी मैं स्वयं करता हूँ। मैंने बड़े-बड़े बुद्धिमान चतुर और निपुण माने जाने वाले पर भी समय पर ऐसा चक्कर चलाया कि वे महामूर्ख बने और लोगों में हँसी के पात्र हुए। मैंने कई मूर्खों के हाथों से ऐसे कार्य भी करवा दिये कि जिससे वे लाभान्वित भी हुए और प्रशंसित भी।

हैं। एक दीर्घायु होता है, तो दूसरा युवावस्था में ही मर जाता है। इस प्रकार के समस्त चमत्कार मेरे ही हैं। मेरे सिवाय और किसी में यह शक्ति नहीं है। मैं जिस पर प्रसन्न होता हूँ, उसे सभी इच्छित पदार्थ मिलते हैं और जिस पर मेरी वक्रदृष्टि हो जाती है, वह लुट जाता है, बरबाद हो जाता है। राजा को रंक और रंक को राजा बनाने वाला मैं ही हूँ। मेरे सिवाय ऐसा कोन शक्तिशाली है जो मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों को भी स्वर्गीय सुख प्रदान कर दे ? यदि मैं किसी को नरक के गहन गर्त में धकेल कर घोर दुःख देना चाहूँ, तो क्या काल या स्वभाव उसे बचा सकेगा ?

जीवों को प्राण-शक्ति मैं ही प्रदान करता हूँ। एकेन्द्रिय से निकाल कर पंचेन्द्रिय की उच्च-जाति में मैं ही प्रतिष्ठित करता हूँ और यदि कुपित हो जाऊँ तो पंचेन्द्रिय के उच्चासन से पटक कर एकेन्द्रिय के निगोद के गोले में भी मैं ही फंसा देता हूँ। शरीर स्वास्थ्य, मनोबल एवं बौद्धिक-विकास करने वाला मैं ही हूँ और इससे उलट-विनाश भी मैं स्वयं करता हूँ। मैंने बड़े-बड़े बुद्धिमान चतुर और निपुण माने जाने वालों पर भी समय पर ऐसा चक्कर चलाया कि वे महामूर्ख बने और लोगों में हँसी के पात्र हुए। मैंने कई मूर्खों के हाथों से ऐसे कार्य भी करवा दिये कि जिससे वे लाभान्वित भी हुये और प्रशंसित भी।

सद यह समझते होंगे कि कर्मचन्द्र महाकूर और निंद्य हैं किन्तु नहीं, मैं न तो कूर हूँ और न कृपालु । मैं विशुद्ध न्याय करता हूँ । मैं एक बीतराग के समान तटस्थ रह कर जिसके जो प्रकृति होती है, उसे वैसा ही फल देता हूँ । मुझे ठगने या मुझसे अन्यथा करवाने की शक्ति किसी में नहीं है । मैं अपने कर्जंदारों को लाख अथवा करोड़ वर्ष बीतने पर भी नहीं भूलता । कहा भी है कि—

“ना भुक्तं क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि ।

अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम्” १ । १।

— करोड़ों कल्प व्यतीत हो जाय तो भी किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता । किये हुए कर्मों का फल तो अवश्य भोगना पड़ता है ।

युग पलट जाते हैं, राज्यशासन बदल सकते हैं, रीति-

१ आगमों ने भी मेरी सत्ता स्वीकार की है । यथा—

“कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि”—किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना मुक्ति नहीं होती (उत्तरा १३-१०)

“कत्तारमेव अणुजाइकम्मं”—कर्म कर्ता का अनुसरण (पीछा) करता है (उ. १३-२३)

“कम्मसच्चा हू पाणिणो”—प्राणियों के कर्म ही सच्चे हैं (उ. ७-२०)

“कम्मोहि तुप्पन्ति पाणिणो । सयमेव कउंहि गाहउ, नो तस्मिं मुच्चेज्जणुदुयं”—जीव अपने कर्म से लिप्त हो कर दुयो होते हैं । उनके कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता । (सूय. १-२-१-४)

“शकदाल ! यदि कोई पुरुष तुम्हारे वरतन तोड़े-फोड़े नष्ट करे, या चुरावे (और कोई पुरुष तुम्हारी पत्नी के साथ संभोग करे) तो क्या तुम उसे दण्ड दोगे”—भगवान् प्रश्न किया ।

“भगवन् ! मैं उस पुरुष को मारूँगा, पीटूँगा, ठोकरों से पीट दूँगा, पाँव तले रोंदूँगा और बांध कर डण्डे बरसाऊँगा । मेरा हाथ ही नहीं, प्राण भी हरण कर लूँगा”—शकदाल ने आवेश के साथ कहा ।

“शकदाल ! तुम अपने सिद्धांत के अनुसार उस पुरुष को दण्ड नहीं दे सकते । क्योंकि तुम्हारे मत से वरतनों का फूटना ही सब नियति के अनुसार ही हुआ, पुरुषार्थ से नहीं, फिर उस पर क्रोध क्यों करना और पीटना भी क्यों ? ऐसा करके तुमने अपने विरुद्ध आचरण कर के पुरुषार्थ को ही मान्य कर दिया । अब तुम्हें स्पष्ट रूप से उत्थान^१ कर्म-बल-वीर्य-पुरुष-कार-कर्म को स्वीकार कर लेना चाहिए”—भगवान् ने कहा ।

शकदाल समझ गया । उसने नियतिवाद त्याग कर पुरुषार्थ का सिद्धांत ग्रहण कर भगवान् का अनुशासन स्वीकार किया और भगवान् का परम भक्त बन गया ।

(३) भगवती सूत्र के प्रथम शतक तृतीय उद्देशक में—

^१ उत्थान—कार्य करने को उत्थार होना—उठना । कर्म—दयार, दण्डना, मोक्षना आदि । बल—शारीरिक सामर्थ्य, वीर्य—प्राप्ति का बल । पुरुषकार पराक्रम—कार्योन्मादि योग्य प्रयत्न ।

—सूर्य पूर्व में उदय होता है, परन्तु वह भी यदि कभी पश्चिम में उदय होने लगे। अटल माना जाने वाला सुमेरु पर्वत भी कभी चलायमान हो जाय, अग्नि उष्णता छोड़ कर शीतल हो जाय, पर्वत की शिला पर कमल उत्पन्न हो जाय। ये सभी अनहोनी भी कदाचित् देवयोग से हो जाय, परन्तु भवितव्यता स्वरूप जो कर्मरेखा बन चुकी, वह तो अचल, अटल ही रहती है। वह किसी भी शक्ति से अन्यथा नहीं हो सकती।

हे पुरुषार्थ वादी ! वह भवितव्यता—होनहार में ही हैं। मेरे अटल विधान में परिवर्तन करने की शक्ति किसी में भी नहीं है। मनुष्य कुछ भी सोचे, कितना और कैसा ही प्रयत्न करे, मैं अपने स्थान पर अटल रह कर अपना विधान सफल कर के ही रहता हूँ। मेरे विधान के अनुसार ही फल मिलता है। मैं पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हूँ। मुझ पर किसी का बल नहीं चल सकता।

प्रत्यक्ष में दिखाई देने वाले एक जीव के प्रयत्न का फल, मैं दूसरे को भी दिला सकता हूँ। सपेरे के पिटारे में रहे हुए सपें और चूहे का दृष्टांत तो प्रसिद्ध ही है। एक भूखे चूहे को मिठाई की गन्ध आई, वह भूखा था। मिठाई का पिटारा और साँप का करंडिया—दोनों निकट ही रखे हुए थे। चूहा साँप के पिटारे को मेवा-मिठाई का भाजन समझ कर काटने लगा। घंटा-दो घंटा परिश्रम कर के उस में छिद्र बनाया। परन्तु उसके भीतर बंठे हुए भूखे सपें ने उस चूहे का ही भक्षण

करना। इस प्रकार पुरुषार्थ करने पर ही सफलता मिलती है। बिना पुरुषार्थ के पूर्वोक्त तीन प्रकार की अनुकूलता भी व्यर्थ हो जाती है। इसलिए उन तीन के साथ पुरुषार्थ का जुड़ना भी आवश्यक है। इस समय कालादि तीनों गोण और पुरुषार्थ मुख्य हो जाता है।

पुरुषार्थ करते हुए भी कभी विघ्न उत्पन्न हो जाते हैं, जो दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो प्रयत्न कर के दूर किये जा सकते हैं, और दूसरे वे जो किसी भी प्रकार नहीं टलते। अभ्यास करते हुए किसी रोग ने घर-दवाया और पढ़ाई रुक गई, किंतु पुरुषार्थ से डॉक्टर के पास गये, दवाई ली और स्वस्थ हो कर अभ्यास चालू किया। एक निराधार विद्यार्थी को छात्रवृत्ति मिलती थी, पुस्तकादि भी किसी की ओर से प्राप्त थे। किसी कारण छात्रवृत्ति बंद हो गई, और पढ़ाई रुकने का समय आया, किंतु प्रयत्न करने पर किसी अन्य से सहायता प्राप्त हो गई और पढ़ाई चालू रही। इस प्रकार पुरुषार्थ में हटायें जाने वाले विघ्न तो पूर्व-कर्म में माने जाते हैं, किंतु कभी किसी के सामने ऐसे विघ्न आ कर उठ जाते हैं कि जो टल ही नहीं सकते। जैसे—परीक्षा देने समय अचानक चमकर खा कर गिरना और मूर्च्छित हो जाना, परीक्षा के दिन ही कोई दुर्घटना हो जाना इत्यादि। इसमें परिश्रमपूर्वक किये हुए अभ्यास का कोई परिणाम नहीं मिले और अनुश्रम ही रहना पड़े। इस प्रकार के विघ्न निषांत हो

प्रारब्ध (पूर्वकर्म) का विषय अधिकांश सजीव वस्तु से सम्बन्धित है। निर्जीव वस्तु के विषय में तो इतना ही है कि सजीव वस्तु के पूर्वकालीन संयोग (मिश्र-परिणत) ही उसके पूर्व-कर्म हैं। सजीव प्राणोवर्ग यद्यपि इन्द्रिय, प्राण, शरीर, अंगोपांग, गति, जाति, संहनन, संस्थान, जीवन-मरणादि पूर्व-कर्म के अनुसार प्राप्त होते हैं, तथापि कर्मानुसार प्राप्त प्रत्येक शक्ति का विकास तो पुरुषार्थ से ही होता है। शरीर मिला कर्मयोग से, परन्तु शरीर का पोषण, रक्षण आदि नहीं किया जाय, तो उसका विकास नहीं होता। इन्द्रियों की भी रोगादि से रक्षा नहीं की जाय, तो विकास के बदले विनाश होने लगता है। सभी कर्म ऐसे निकाचित नहीं होते कि जो बिना पुरुषार्थ किये फल दे ही देते हों। कई कर्मों का उदय संयोगाधीन होता है, कई देश-काल के स्वभावाधीन होते हैं और कई कर्मों का उपशम, संक्रमण, उद्घर्शन, अपवर्तन ही सकता है। इसलिए पूर्वकर्म की मर्यादा भी अनुल्लंघनीय नहीं है।

कुछ लोग यह सोच कर कि—“कर्म में लिखा है, बही होगा। इसमें न्युनाधिक नहीं हो सकता।” इस प्रकार कर्म को स्वतन्त्र कारण मानने की भूल करते हैं। इससे प्रत्यर्थ भी हो सकते हैं। कर्म को स्वतन्त्र कारण मानने वाले, पुरुषार्थ छोड़ कर आलसी एवं अकर्मण्य बन सकते हैं और धर्म-कर्म से भ्रष्ट हो सकते हैं। वे प्राप्त संपत्ति एवं शक्ति भी देते हैं। और जो लोग कर्म-कारण का सर्वथा निवेद्य करते हैं, कर्म-फल-

है । यद्यपि नियति का समावेश पूर्वकर्म में हो सकता है, परन्तु पूर्वकर्म का अधिकांश भाग पुरुषार्थ के अधीन होने के कारण निकाचित कर्म को नियति के अन्तर्गत रखा गया है, क्योंकि यह पुरुषार्थ की सत्ता से बाहर है ।

यद्यपि एक कार्य साधने में अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती है । उन सब की गणना की जाय तो अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु उन सब का समावेश इन पाँच कारणों में हो सकता है । इन पाँच कारणों का भी 'संग्रह नय' से संक्षेप किया जाय तो काल, पुरुषार्थ के संयोग में, नियति पूर्वकर्म में और प्रारब्ध (कर्म) भूतकालीन पुरुषार्थ में मिल कर स्वभाव और पुरुषार्थ ये दो ही मुख्य कारण रहते हैं ।

महामन्त्री, महोदय ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार पाँच कारणों का यत्किंचित् पृथक्करण करके योग्यायोग्य का विचार किया है । आप स्वयं सत्यासत्य का निर्णय कर के इन वादियों को न्याय प्रदान करें । यही मेरा निवेदन है ।

महामन्त्रीजी राजेन्द्र से निवेदन करने के लिए खड़े हुए और बोले; —

“महाराजाधिराज । पंडितजी ने पाँचों कारणों की जो समीक्षा की, वह उचित है । अब इसमें विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं लगती । इसलिए इन पाँचों को निर्णय प्रदान करने की कृपा करें ।

की गौणता है। अचानक अकस्मात् (घटना विशेष में) नियति की प्रधानता और अन्य की गौणता है। वस, इसी प्रकार प्रत्येक वादी अपने-अपने विषय में प्रधानता और अन्य के विषय में अपनी गौणता स्वीकार कर के गर्व और अधिक वाद त्याग करदे और एक-दूसरे का बल स्वीकार करें।

सभी समासद और वादीगण महाराजा की जय बोलते प्रणाम करके चले गये। (सभा विसर्जित हुई)

अपने विचार

उपरोक्त निर्णय का अनुवाद लिखते समय मेरे मन में विचार उत्पन्न हुए, उन्हें भी मैं पाठकों के विचारार्थ त करना उपयुक्त समझता हूँ।

पंडितजी के पर्यालोचन और महाराजा के निर्णय में कार्य में पाँचों कारणों का सम्बन्ध स्वीकार करते हुए ह्यता-गौणता और नियति के क्षेत्र की संकुचितता बताई है कदाचित् व्यावहारिक दृष्टि से होगी और नियति की शक्ति भी बड़ी घटनाओं की दृष्टि से बताई होगी। पाँचों कारणों का प्रत्येक कार्य की नियति में योग उचित है, और सभी का क्षेत्र भी समान है। कार्य छोटा या बड़ा हो या बड़ा, मेरी समझ से पाँचों की नियति अनिवार्य लगती है।

नियति का काम भी दोनों प्रकार का है—नियति

२ नियति-नियत होना—उन महात्माओं का प्रयत्न इस भाव में वाक्य हो, इस प्रकार तो नियति नहीं थी। उनका देव और मनुष्य भव पुनः करना ही होता है। इसलिए उस भव में सिद्ध नहीं होते।

इस प्रकार किसी भी कार्य की सफलता-निष्फलता में पापों का सम्मिश्रित होना और अनुकूल-प्रतिकूल रहना उचित लगता है। इतना होते हुए भी मनुष्य को चाहिये कि पुरुषार्थ की मुख्यता देकर सम्यक् प्रयत्न करता रहे। छद्मस्थ मनुष्य भवितव्यता नहीं जान सकता। इसलिए उसे आत्म-शुद्धि का प्रयत्न करते ही रहना चाहिये। उसे नियति के भरोसे प्रमादी नहीं बनना है। छद्मस्थ मनुष्य के लिये व्यवहार (पुरुषार्थ) प्रथम स्थान रखता है और केवलज्ञानी के लिये निश्चय (नियति) प्रथम है। अतएव सम्यग् पुरुषार्थ करना ही हितकारी है।

आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी ने उपदेश-पद गा. १६४ में कहा है कि—

“कालो सहाव-नियई, पुव्वकयं पुरिस-कारणेगंता।

मिच्छत्तं ते चेव उ, समासओ होति सम्मत्तं।”

—काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत-कर्म, और पुरुषकार, इन कारणों को एकान्त रूप से प्रत्येक को अकेला कारण माने तो वह मिथ्यात्व है, और इन में से किसी को भी नहीं छोड़ कर सभी को साथ—एकत्रित मानना सम्यक्त्व रूप होता है।

चारित्र्य-मोहनीय के अनन्तानुबन्धी कपाय-चतुष्क के सतत-सहयोग की आवश्यकता है। मोहराज का महासेनाधिपति मिथ्यात्व-मोहनीय है, तो उसका प्रबलतम शस्त्र—चक्र-कुदर्शन—अनन्तानुबन्धी है। दोनों का अविनाभावी सम्बन्ध है। इनका साथ कभी छुटता ही नहीं। हां, यह हो सकता है कि कभी अन्य चोकड़ी की प्रबलता में इसका प्रवाह मंद हो जाता हो। देवलोक एवं ग्रैवेयक में रहे हुए प्रथम गुणस्थानी देव के संज्वलन चोक का विशेष उदय हो और उसके वेग के आगे अनन्तानुबन्धी का प्रवाह दब जाता हो। जैसे महानदी में आई हुई वेगपूर्वक बाढ़ के समय नाले का बहाव कुछ रुक जाता है, उसी प्रकार संज्वलन के प्रवाह में अनन्तानुबन्धी का प्रवाह मंद हो जाता है, परन्तु मिथ्यात्व तो अक्षुण्ण रहता है और अनन्तानुबन्धी के बिना मिथ्यात्व टिक ही नहीं सकता। जब सादिसपर्यवसित सम्यक्त्व छूट जाता है, तो सब से पहले अनन्तानुबन्धी की चोकड़ी सिर उठा कर खड़ी होती है (गुणस्थान २ में) और उसके बाद (उत्कृष्ट चहूँ आवलिका में) मिथ्यात्व के कारागार में आत्मा पहुँच जाती है।

अनन्तानुबन्धी की परिभाषा करते हुए स्थानांगसूत्र ४-१ में टीकाकार श्री अभयदेवमूरिजी बतलाते हैं कि—

“अणंताणुबन्धी—अनन्तानुबन्धिन्—पुं. अनंतं संसारं भवमनुबध्नाति अविच्छिन्नं करोतीत्येवंशीलोऽनन्तानुबन्धो यस्येत्यनन्तानुबन्धी। सम्यग्दर्शन सह-

और उग्र कपायी होने का प्रसंग ही नहीं आता। वे एकदम शान्त होते हैं। उनकी शुक्ल-लेश्या भी नीचे के वैमानिक देवों से अधिक उज्ज्वल और प्रशस्त होती है, किन्तु उनमें भी प्रथम-गुणस्थानी अनन्तानुबन्धी के पात्र हैं।

छठे नरक के नैरयिक कृष्ण-लेश्या वाले हैं और सातवें के उग्रतम कृष्णलेश्या वाले। किन्तु इनमें भी अनन्तानुबन्धी के उदय से वंचित चतुर्थगुणस्थानी सम्यग्दृष्टि भी हैं। जो जीव अप्रत्याक्ष्यानी कपाय के उदय वाले हैं उनके भी क्रोधादि चारों कपाय होती है और उग्र भी होती है। दशाश्रुतस्कन्ध अ. ६ के आस्तिक सम्यग्दृष्टि का वर्णन इस बात को स्पष्ट करता है। वहाँ बताया हुआ सम्यग्दृष्टि क्रूर है, अत्यन्त क्रोधी है, छोटे-से अपराध का भारी दण्ड देने वाला है और अपने कुकृत्य के फल स्वरूप नरक में जाने योग्य है, फिर भी अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित, अप्रत्याक्ष्यानी कपाय के तीव्र उदय वाले हैं।

जीवों को परिणति विभिन्न प्रकार की है। कई गुण होते हैं कि समझते मग्न कुछ हैं, योग्यायोग्य, हानिनाश, पुण्य-पाप और हिताहित का विचार भी करते हैं। परन्तु उग्र उदय-भाव का जोर होता है, जो उग्र हो जाने है। उग्र समय में अपने को सम्भाल नहीं सकते। उदयभाव के कारण ही सम्यग्दृष्टि जीव छठे नरक तक कृष्णलेश्या और सम्यग्दृष्टि गुण ना सक्त हैं (भगवती १३-१) इनके अनन्तानुबन्धी के उदय

जाता है । उसे देर-गौर नष्ट होना ही पड़ता है ।

इसलिये आत्म-सौधक, आत्मार्थी का कर्तव्य है कि मित्यात्म एवं अनन्तानुबन्धी कर्माय को नष्ट करने के लिए जिनेश्वर भगवंत के निर्णय-प्रवचन पर दृढ़ीभूत-अटूट श्रद्धा रख कर यथाशक्ति आराधना करता रहे । यही इस महापाश से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है ।

रघुनाथ पटेल की छाछ

एक छोटा-सा गाँव था—सो सवा-सो घरों का अधिकतर लोग कृपक थे, कुछ मजदूर और बढ़ई-लुहार आदि रघुनाथ पटेल वहाँ के मुखिया थे । घर के सुखी-सम्पन्न और प्रतिष्ठित । हृदय के उदार मिलनसार और अतिथि-सत्कार की रुचि वाले । अच्छी उपजाऊ भूमि के स्वामी । गोष्ठ में गायों-भैसों का झुण्ड और पर्याप्त दूध-दही-घृत । गाँव के कुछ अन्य लोगों के भी दूध होता था, परन्तु रघुनाथ पटेल के सिवाय सभी निकट के नगर में अपना दूध बेच देते थे । एक रघुनाथ पटेल ही ऐसे थे जो दूध नहीं बेचते, घृत बना कर बेचते थे और छाछ गाँव के लोगों में वितरण करते थे । लोगों की छाछ

एक ही है—“परम वीतराग सर्वज्ञसर्वदर्शी जिनेश्वर भगवंत आदि देव”—“धम्माणं कासवोमुहं” (उत्तरा. २५) इस अवसर्पिणी के आदि तीर्थंकर भगवान् काश्यप श्री आदिनाथजी हैं। उनके पूर्व अकर्मभूमि जैसी स्थिति थी। भगवान् ऋषभ-देवजी इस अवसर्पिणी काल के प्रथम महाराजा, प्रथम श्रमण, प्रथम सर्वज्ञसर्वदर्शी और प्रथम तीर्थंकर हुए। उन जिनेश्वर भगवंत ने धर्मोपदेश दिया। उनकी वीतराग वाणी रूपी प्रवचन गंगा प्रवाहित हुई, जिसका पान कर के असंख्य आत्माएँ पवित्र हो कर, अनन्त जीवन पा गईं। वह प्रवचन-प्रवाह विभिन्न प्रकार की भूमि में पहुँच कर विभिन्न वर्ण-गन्ध-रस स्पर्श के मिश्रण से—अच्छे-बुरे संयोग से बदलती-पलटती रूपान्तरित रसान्तरित, गन्धान्तरित हो गई। इस प्रकार विभिन्न मत-मतान्तरों में जो क्वचित् अहिंसा-सत्यादि की कुछ बातें सुनाई देती है, वे सभी—रघुनाथ पटेल की छाछ के समान—जिनेश्वर भगवंत द्वारा प्रसारित निर्ग्रन्थ-प्रवचन की ही है। शेष सब दूसरों की अपनी मिलावट है।”

संत वहाँ से विहार कर आगे पधारे, जहाँ श्रमणों-पासकों की अच्छी संख्या थी। संतों के मन में छाछ के निमित्त से गुरुदेव से मिले हुए तत्त्वबोध पर चिन्तन चल रहा था। प्रतिक्रमण के पश्चात् एक शिष्य ने पूछा;—

“गुरुदेव ! रघुनाथ पटेल की छाछ अन्य घरों में जा कर पानी आदि से मिश्रित हो गई, फिर भी वह पी जाती

हो, और धुनी तापने तथा यज्ञादि में असंख्य स्थावर ही नहीं। वसजीव भी भस्म होते रहते हों, खान-पान, स्नान-मंजन एवं गमनागमन सभी सदोप हों, हाथी-घोड़े पर चढ़ते हों, रात्रि भोजन भी चलता हो, धुमपान आदि सदोप जीवन अपने-प्राप दूसरी कसौटी के लिये भी अयोग्य है।

अन्यमतों की अपेक्षा बौद्ध-धर्मी अपने को विशेष अहिंसक बतलाते हैं, परन्तु स्थावरकाय जीवों की यतना का विवेक तो वहाँ भी नहीं है, तथा अनेक प्रकार के सावधकर्म एवं आरम्भ वे करते हैं और उनके आराध्य, भक्त का न्योता मान कर अपने संकड़ों साधुओं के साथ एक ही घर भोजन करने जाते थे। उनके लिये पशु को मार कर मांस पकाया जाता था और वे खाते थे। वे भी इस कसौटी से अयोग्य टहरते हैं।

तत्त्ववाद—अंतिम ताप रूपी कसौटी तत्त्ववाद है। जीव तत्त्व को मानने के साथ जीवों का पृथक्त्व (अनंत जीव-द्रव्य होना) कथंचित् नित्य, कथंचित् अनित्य, कर्म का कर्ता, भोक्ता, विभावदशा के कारण विभिन्न गतियों में भटकने वाला और धर्मसाधना से मुक्ति प्राप्त कर शाश्वत सुखी होने वाला जिन शास्त्रों में माना हों, वे इस कसौटी से भी शुद्ध ही प्रमाणित होते हैं।

जीव-तत्त्व को मानते हुए भी जो संसारभर में केवल एक ही आत्मा मानते हों—विभिन्न असंख्य शरीरों में मात्र

अन्य गति के योग्य नारक-पशु देव आदि रूप गति एवं शरीर का परिवर्त्तन होता रहता है । इस प्रकार आत्मा का 'परिणामी नित्य' होना प्रत्यक्ष है । आत्म-द्रव्य नित्य होते हुए भी पूर्वपर्याय—अवस्था—नष्ट होती और नई अवस्था उत्पन्न होती है । इस प्रकार द्रव्य-दृष्टि से आत्मा नित्य होते हुए भी पर्याय दृष्टि से परिवर्त्तनशील है—उत्पाद-व्यय युक्त है ।

क्षणिकवादी का तत्त्ववाद भी अनुपयुक्त है । पर्यायों में परिवर्त्तन होते हुए भी आत्मा नित्य है । जो बालक है, वही युवा और वृद्ध होता है—दूसरा नहीं । जो पाप-पुण्य करता है, वही उसका फल भोगता है । करने वाला करते ही नष्ट हो गया और भोगने वाला कोई दूसरा ही हो, ऐसा नहीं होता । अतएव क्षणिकवादी का तत्त्ववाद भी कसौटी पर चढ़ने योग्य नहीं है ।”

“उपरोक्त सभी कसौटियों से जिनधर्म ही सत्य प्रमाणित होता है । इसमें सन्देह नहीं होना चाहिये”—आचार्य प्रवर श्री गुणचन्द्रजी स्वामी ने समाधान किया ।

शिष्य संतुष्ट हुआ । उपस्थित श्रावकगण की धर्म श्रद्धा दृढ़ हुई ।



शैशव अवस्था की चर्या ओर होती है, तो किशोरावस्था की चेष्टा कुछ ओर होती है। इसी प्रकार युवावस्था, प्रौढ़ावस्था वृद्धावस्था की रुचि, कार्यकलाप और परिणति क्रमशः पलटती रहती है। गृहस्थावस्था की परिणति, श्रमण अवस्था में नहीं रहती और वीतराग बनने पर तो दशा ही अनूठी—अपूर्व बन जाती है।

जिनेश्वर भगवन्तों का समस्त जीवन ही लोकोत्तम होता है। उनकी बाल्यावस्था की चेष्टाएँ, अन्य सभी बालकों से निराली तथा उच्च प्रकार की होती है। इसी प्रकार यौवन-काल एवं गृहस्थ जीवन भी उच्च होता है और संयमी जीवन तो एकदम निर्दोष एवं पवित्र होता है। वे पूर्णतया निस्संग, एकाकी और असंयोगी होते हैं। इस श्रमण जीवन में वे संसारियों से सम्बन्धित नहीं रहते, न संसारियों के जात-भात, लेन-देन, सम्पन्नता-विपन्नता और सुख-दुःख के भौतिक उपाय पर चिन्तन ही करते हैं। वीतराग सर्वज्ञ होने के पश्चात् ही वे धर्मोपदेश देते हैं। धर्मोपदेश में आत्मा को राग-द्वेष, विषय-वासना एवं कर्मबन्ध से रहित हो कर शाश्वत अनन्तमुख प्राप्त करने का उपदेश देते हैं। यही प्रवृत्ति सहज रूप से होती रहती है। वे न तो राजनीति का उपदेश करते हैं, न सामाजिकता का। उनका समस्त त्यागी-जीवन संसार की हलचल, बादविवाद, ऊँचनीच, सम्पन्नता-विपन्नता और सुख-दुःख से भलिप्त, पृथक् एवं निरपेक्ष रहता है। वे संसार से भलिप्त

को 'धर्म—जिनधर्म'—कहना असत्य है, झूठ है।

कोई यों भी कहते हैं कि "भ. रिषभदेवजी ने सुनन्दा के साथ पुनर्विवाह किया था।" यह कथन भी सर्वथा मिथ्या है। सुनन्दा कुमारिका थी, अक्षत कीमार्थ युक्त थी। न तब वह विधवा थी और न परित्यक्ता ही। उसका किसी से सम्बन्ध या संभोग हुआ ही नहीं था। उसका सहजात बालक अपने वचपन में ही मर गया था। उसे विधवा मानना सरासर झूठ है और अज्ञान, कुश्रद्धा तथा मोहोदय का कुपरिणाम है।

कई कहते हैं—भगवान् अछूतों की दशा देख कर तिलमिला उठे। उन्होंने समाज-सुधार का बीड़ा उठाया और जोर-शोर से कहा—“कम्मुणा वंभणोहोई.....सुद्धो हवइ कम्मुणा”। यह एक सिद्धांत की बात है। इसका तात्पर्य यह तो नहीं हो सकता कि भगवान् ने अछूतोद्धार का बीड़ा उठा कर समाज को बदलने में जुट गये? इसी प्रकार 'स्त्री-वर्ग की दुर्दशा देख कर भगवान् ने विद्रोह कर दिया'—यह कथन भी निराधार और मिथ्या है।

इस प्रकार जितने भी कुप्रचार होते हैं, वे मिथ्या हैं और अनजान लोगों को भ्रम में डाल कर पथ-भ्रष्ट करने के लिये होते हैं। ऐसे अन्यथा-वादियों से सावधान रहना चाहिए।

भगवान् के जन्मकल्याणक पर इस प्रकार के जितने भी भ्रम फैलाये गये हैं, उनको मिथ्या मान कर कुश्रद्धा रूपी पाप से अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिये।

सन्मति शब्द का कितना भी महान् अर्थ क्यों न हो, वह केवल ज्ञान की विराटता को अपने में नहीं समेट सकता। केवल ज्ञान के लिए सन्मति नाम छोटा ही पड़ेगा, ओछा ही रहेगा। वह केवल-ज्ञानी को महानता व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकता। जिनकी वाणी एवं दर्शन ने अनेकों की शंकाएँ समाप्त की हों, अनेकों को सन्मार्ग दिखाया हो, सत्पथ में लगाया हो, उनकी महानता को किसी एक की शंका को समाप्त करने वाली घटना कुछ विशेष व्यक्त नहीं कर सकती।

वढ़ते तो अपूर्ण हैं, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका हो, उसे 'वर्द्धमान' कहना कहाँ तक सार्थक हो सकता है। इसी प्रकार महावीर की वीरता को साँप और हाथी वाली घटनाओं से नापना कहाँ तक सम्भव है, यह एक विचारने की बात है।

यद्यपि महावीर के जीवन सम्बन्धी उक्त घटनायें शास्त्रों में वर्णित हैं, तथापि ये बालक वर्द्धमान को वृद्धिगत बताती हैं, भगवान् महावीर को नहीं। साँप से न उरना बालक वर्द्धमान के लिए गौरव की बात हो सकती है, हाथी को बश में करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशंसनीय कार्य हो सकता है, भगवान् महावीर के लिए नहीं। आचार्यों ने उन्हें यथास्थान ही इंगित किया है। वन विहारी पूर्ण अभय को प्राप्त महावीर एवं पूर्ण धीनरागा सर्वस्वातंत्र के उद्घोषक तीर्थंकर भगवान् महावीर के लिए साँप से न उरना, हाथी को काटू में रखना क्या महत्त्व रखते हैं ?

क्षेत्र में पर को जीता जाता है और धर्मक्षेत्र में स्वयं को । युद्धक्षेत्र में पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में अपने विकारों को ।

महावीर की वीरता में दौड़-धूप नहीं, उछलकूद नहीं, मारकाट नहीं, हाहाकार नहीं, अनन्त शान्ति है । उनके व्यवित्व में वैभव की नहीं, वीतराग-विज्ञान की विराटता है ।

एक बात यह भी तो है कि दुर्घटनाएँ या तो पाप के उदय से घटती है या पाप-भाव के कारण । जिसके जीवन में न पाप का उदय हो न पाप-भाव ही, तो फिर दुर्घटनाएँ कैसे घटेगीं, क्यों घटेगीं । अनिष्ट-संयोग पाप के उदय के बिना सम्भव नहीं है, तथा वैभव और भोगों में उल्लास पाप भाव के बिना असम्भव है । भोग के भावरूप पाप-भाव के सद्भाव में घटने वाली घटनाओं में शादी एक ऐसी दुर्घटना है जिसके घट जाने पर दुर्घटनाओं का एक, कभी न समाप्त होने वाला सिलसिला आरम्भ हो जाता है । सोभाग्य से महावीर के जीवन में यह दुर्घटना न घट सकी ^१ । एक कारण यह भी है कि उनका जीवन घटना प्रधान नहीं है ।

लोक कहते हैं कि वचपन में किसके साथ क्या नहीं घटता, किसके घुटने नहीं फूटते, किसके दाँत नहीं टूटते ? महावीर के साथ भी निश्चित रूप से यह सब कुछ घटा ही

^१ यह उल्लेख दिगम्बर मान्यता के अनुसार है । श्वेताम्बर परम्परा महावीर को विवाहित मानती है — सम्पादक जिनवाणी

जो देश था । उनका भाग विद्रोहभूत न था । उनके भाग और भाग के कारणों को दूसरों में मानना महावीर के भाग सम्मान है । वे 'न काहू म सखा, न काहू से वैश' के दास पद बने थे ।

सोदशयोग्य पद नलन सल विरागी महावीर को समझने के लिए उनके अन्तर में झाँकना होगा । उनका वैराग्य देश-काल की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न नहीं हुआ था । उनके कारण, उनके अन्तर में विद्यमान थे । उनका विराग परोपजीवी नहीं था । जो वैराग्य किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है, वह क्षण-जीवी होता है । परिस्थितियों के बदलते ही, उसका समाप्त हो जाना सम्भव है ।

यदि देश-काल की परिस्थितियाँ महावीर के अनुकूल होती तो, क्या वे वैराग्य धारण न करते ? गृहस्थी बसाते, राज करते ? नहीं, कदापि नहीं और परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल थीं हीं कब ? तोर्थकर महान् पुण्यशाली महापुरुष होते हैं । अतः परिस्थितियों का प्रतिकूल होना सम्भव नहीं था ।

वैराग्य या विराग, राग के अभाव का नाम है, विद्रोह का नाम नहीं । वे वैरागी राग के अभाव के कारण बने थे, न कि विद्रोह के कारण । महावीर वैरागी राजकुमार थे, न कि विद्रोही । महावीर जैसे अद्रोही महामानव में विद्रोह खोज लेना अभूतपूर्व खोज बुद्धि का परिणाम है । बालू में से तेल निकाल लेने जैसा यत्न है ।

संघ के प्रकाशन

	मूल्य
१ मोक्षमार्ग ग्रंथ	अप्राप्य
२ भगवती सूत्र भाग १	अप्राप्य
३ भगवती सूत्र भाग २	"
४ भगवती सूत्र भाग ३	"
५ भगवती सूत्र भाग ४	५-००
६ भगवती सूत्र भाग ५	५-००
७ भगवती सूत्र भाग ६	५-००
८ भगवती सूत्र भाग ७	७-००
९ उत्तराध्ययन सूत्र	५-००
१० उववाइय सुत्त	२-००
११ जैन स्वाध्यायमाला	अप्राप्य
१२ दशवेकालिक सूत्र	१-५०
१३ सिद्धस्तुति	०-७५
१४ स्त्री-प्रधान धर्म	अप्राप्य
१५ सुखविपाक सूत्र	०-२०
१६ कर्म-प्रकृति	०-१६
१७ सामायिक सूत्र	०-१३
१८ सूयगडांग सूत्र	अप्राप्य
१९ विनयचंद चौबीसी	०-४०
२० नन्दी सूत्र	अप्राप्य
२१ आलोचना पंचक	०-२०
२२ संसार-तरणिका	अप्राप्य
२३ सम्यक्त्व-विमर्श (हिन्दी)	"
२४ जीव-घड़ा	०-२०

